ॐ

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

मङ्गल अर्चना

श्री मङ्गलाष्टक

(शार्दूलविक्रीड़ित)

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धीश्वराः,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।
श्रीसिद्धान्तसुपाठकाः मुनिवराः रत्नत्रयाराधकाः,
पंचैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ 1॥

श्रीमन्नम्र – सुरासुरेन्द्र – मुकुट – प्रद्योत – रत्नप्रभा–
भास्वत्पादनखेन्दवः प्रवचनाम्भोधीन्दवः स्थायिनः।
ये सर्वे जिनसिद्ध–सूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः
स्तुत्या योगिजनैश्च पञ्चगुरवः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ 2॥

सम्यग्दर्शन–बोध–वृत्तममलं रत्नत्रयं पावनम्,
मुक्ति–श्री नगराधिनाथ–जिनपत्युक्तोऽपवर्गप्रदः।
धर्मः सुक्तिसुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालयं श्रयालयम्,
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ 3॥

नाभेयादि-जिनाधिपास्त्रिभुवनख्याता:चतुर्विंशति:,
श्रीमन्तो भरतेश्वरप्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश:।
ये विष्णु-प्रतिविष्णु-लांङ्गलधरा: सप्तोत्तरा विंशति:,
त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्ठिपुरुषा: कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ 4॥

ये सर्वौषधऋद्धय: सुतपसो वृद्धिङ्गता पञ्च ये,
ये चाष्टाँगमहानिमित्त-कुशला येऽष्टाविधाश्चारणा:।
पञ्चज्ञानधरास्त्रयोऽपिबलिनो ये बुद्धि-ऋद्धीश्वरा:,
सप्तैते सकलार्चिता गणभृत: कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ 5॥

कैलाशे वृषभस्य निर्वृतिमही वीरस्य पावापुरे,
चम्पायां वसुपूज्यसज्जिनपते: सम्मेदशैलेऽर्हताम्।
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे नेमीश्वरस्यार्हतो,
निर्वाणावनय: प्रसिद्धविभवा: कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ 6॥

ज्योतिर्व्यन्तर-भावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौ तथा,
जम्बू-शाल्मलि-चैत्यशाखिषु तथा वक्षार-रौप्याद्रिषु।
इष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे द्वीपे च नन्दीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहा: कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ 7॥

यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां जन्माभिषेकोत्सवो,
यो जात: परिनिष्क्रमेण विभवो य: केवलज्ञानभाक्।
य: कैवल्यपुर-प्रवेश-महिमा सम्भावित: स्वर्गिभि:,
कल्याणानि च तानि पञ्च सततं कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ 8॥

इत्थं श्री जिनमङ्गलाष्टकमिदं सौभाग्यसंपत्पदम्,
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थङ्कराणांमुखात्:
ये शृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनैर्धमार्थकामान्विता,
लक्ष्मीराश्रियते व्यपायरहिता निर्वाणलक्ष्मीरपि॥ 9॥

दर्शन-पाठ

दर्शनं देवदेवस्य दर्शनं पापनाशनम्।
दर्शनं स्वर्गसोपानं दर्शनं मोक्षसाधनम्॥1॥

दर्शनेन जिनेन्द्राणां साधूनां वन्दनेन च।
न चिरं तिष्ठते पापं छिद्रहस्ते यथोदकम्॥2॥

वीतराग-मुखं दृष्ट्वा पद्मराग-समप्रभम्।
जन्म-जन्मकृतं पापं दर्शनेन विनश्यति॥3॥

दर्शनं जिनसूर्यस्य संसारध्वान्तनाशनम्।
बोधनं चित्त-पद्मस्य समस्तार्थ-प्रकाशनम्॥4॥

दर्शनं जिन-चन्द्रस्य सद्धर्मामृत-वर्षणम्।
जन्म-दाहविनाशाय, वर्धनं सुख-वारिधेः॥5॥

जीवादितत्त्वप्रतिपादकाय सम्यक्त्वमुख्याष्टगुणाश्रयाय।
प्रशान्तरूपाय दिगम्बराय देवाधिदेवाय नमो जिनाय॥6॥

चिदानन्दैक-रूपाय जिनाय परमात्मने।
परमात्म-प्रकाशाय नित्यं सिद्धात्मने नमः॥7॥

अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम।
तस्मात्कारुण्य भावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वर॥8॥

नहि त्राता नहि त्राता नहि त्राता जगत्त्रये।
वीतरागात्परो देवो न भूतो न भविष्यति॥9॥

जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्दिने दिने।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु भवे भवे॥10॥

जिनधर्मविनिर्मुक्तो मा भवेच्चक्रवर्त्यपि।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि जिन-धर्मानुवासितः ॥11॥

जन्म-जन्मकृतं पापं जन्म-कोटिमुपार्जितम्।
जन्म-मृत्यु-जरा-रोगं हन्यते जिन-दर्शनात् ॥12॥

अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य,
देव त्वदीय-चरणाम्बुजवीक्षणेन।
अद्य त्रिलोकतिलक प्रतिभासते मे,
संसार-वारिधिरयं चुलुकप्रमाणम् ॥13॥

अब प्रभु चरण छोड़.. .....

अब प्रभु चरण छोड़ कित जाऊँ।
ऐसी निर्मल बुद्धि प्रभु दो, शुद्धातम को ध्याऊँ॥ अब. ॥
सुर नर पशु नारक दुख भोगे, कबतक तुम्हें सुनाऊँ।
बैरी मोह महा दुख देवे, कैसे याहि भगाऊँ॥ अब. ॥
सम्यग्दर्शन की निधि दे दो, तो भवभ्रमण मिटाऊँ।
सिद्ध स्वपद को प्राप्त करूँ मैं, परम शान्त रस पाऊँ॥ अब. ॥
भेदज्ञान का वैभव पाऊँ, निज के ही गुण गाऊँ।
तुम प्रसाद से वीतराग प्रभु, भवसागर तर जाऊँ॥ अब. ॥

दर्शन-पाठ

दर्शन श्री देवाधिदेव का, दर्शन पाप विनाशन है।
दर्शन है सोपान स्वर्ग का, और मोक्ष का साधन है॥ 1॥

श्री जिनेन्द्र के दर्शन औ, निर्ग्रन्थ साधु के वंदन से।
अधिक देर अघ नहीं रहै, जल छिद्रसहित कर मैं जैसे॥ 2॥

वीतराग-मुख के दर्शन की, पद्मरागसम शांतप्रभा।
जन्म-जन्म के पातक क्षण में, दर्शन से हों शांत विदा॥ 3॥

दर्शन श्री जिनदेव सूर्य, संसार-तिमिर का करता नाश।
बोधि-प्रदाता चित्त पद्म को, सकल अर्थ का करे प्रकाश॥ 4॥

दर्शन श्री जिनेन्द्रचन्द्र का, सद्धर्मामृत बरसाता।
जन्मदाह को करे शांत औ, सुख वारिधि को विकसाता॥ 5॥

सकलतत्व के प्रतिपादक, सम्यक्त्व आदि गुण के सागर।
शांत दिगम्बररूप नमूँ, देवाधिदेव तुमको जिनवर॥ 6॥

चिदानन्दमय एकरूप, वंदन जिनेन्द्र परमात्मा को।
हो प्रकाश परमात्म नित्य, मम नमस्कार सिद्धात्मा को॥ 7॥

अन्य शरण कोई न जगत में, तुम्ही शरण मुझको स्वामी।
करुण भाव से रक्षा करिये, हे जिनेश अन्तर्यामी॥ 8॥

रक्षक नहीं शरण कोई नहिं, तीन जगत में दुखत्राता।
वीतराग प्रभु-सा न देव है, हुआ न होगा सुखदाता॥ 9॥

दिन-दिन पाऊँजिनवरभक्ति, जिनवरभक्ति, जिनवरभक्ति।
सदा मिले वह सदा मिले, जब तक न मिले मुझको मुक्ति॥ 10॥

नहीं चाहता जैनधर्म के बिना, चक्रवर्ती होना।
नहीं अखरता जैनधर्म से सहित, दरिद्री भी होना॥ 11॥

जन्म जन्म के किये पाप औं बन्धन कोटि-कोटि भव के।
जन्म-मृत्यु औ, जरा रोग, सब कट जाते जिनदर्शन से॥ 12॥

आज युगल दृग हुए सफल, तुम चरण-कमल से हे प्रभुवर।
हे त्रिलोक के तिलक! आज, लगता भवसागर चुल्लू भर॥ 13॥

आज हम जिनराज तुम्हारे.....

आज हम जिनराज तुम्हारे द्वारे आये।
हाँ जी हाँ हम आये आये॥ टेक॥

देखें देव जगत के सारे, एक नहीं मन भाये।
पुण्य-उदय से आज तिहारे, दर्शन कर सुख पाये॥ 1॥

जन्म-मरण नित करते-करते, काल अनन्त गमाये।
अब तो स्वामी जन्म-मरण का, दुखड़ा सहा न जाये॥ 2॥

भव-सागर में नाव हमारी, कब से गोता खाये।
तुम ही स्वामी हाथ बढ़ाकर, तारो तो तिर जाये॥ 3॥

अनुकम्पा हो जाए आपकी, आकुलता मिट जाये।
पंकज की प्रभु यही बीनती, चरण-शरण मिल जाये॥ 4॥

दर्शन-दशक

देखे श्री जिनराज, आज सब विघन नशाये।
देखे श्री जिनराज, आज सब मंगल आये॥
देखे श्री जिनराज, काज करना कुछ नाहीं।
देखे श्री जिनराज, हौंस पूरी मन माहीं॥
तुम देखे श्री जिनराज पद, भौजल अंजुलि जल भया।
चिंतामणि पारस कल्पतरू, मोह सबनि सौं उठि गया॥ 1॥

देखे श्री जिनराज, भाज अघ जाहिं दिसंतर।
देखे श्री जिनराज, काज सब होय निरन्तर॥
देखे श्री जिनराज, राज मनवांछित करिये।
देखे श्री जिनराज, नाथ दु:ख कबहुँ न भरिये॥
तुम देखे श्री जिनराज पद, रोम-रोम सुख पाइये।
धनि आज दिवस धनि, अजघरी, माथ नाथ को नाइये॥ 2॥

धन्य-धन्य जिनधर्म, कर्म को छिन में तोरै।
धन्य-धन्य जिनधर्म, परमपद सौं हित जोरै॥
धन्य-धन्य जिनधर्म, भर्म को मूल मिटावै।
धन्यधन्य जिनधर्म, शर्म की राह बतावै।
धन्य-धन्य जिनधर्म यह, सो परकट तुमने किया॥
भवि खेत पापतप तपत कौं, मेघरूप ह्वै सुख दिया॥ 3॥

तेज सूर-सम कहूँ, तपत दु:खदायक प्रानी।
कांति चन्द-सम कहूँ, कलंकित मूरत मानी॥
वारिधि-सम गुण कहूँ, खान में कौन भलप्पन।

पारस सम जस कहूँ, आप सम करै न पर तन॥
इन आदि पदारथ लोक में, तुम समान क्यों दीजिये।
तुम महाराज अनुपमादर्श, मोहि अनूपम कीजिये॥ 4॥

तब विलम्ब नहिं कियो, चीर द्रौपदी को बाढ्यौ।
तब विलम्ब नहिं कियो, सेठ सिंहासन चाढ्यौ॥
तब विलम्ब नहिं कियो, सीय पावकतैं टार्‌यौ।
तब विलम्ब नहिं कियो, नीर मातंग उबार्‌यौ॥
इह विधि अनेक दुःख भगत के, चूर दूर किय सुख अवनि।
प्रभु मोहि दुःख नासनि विषै, अब विलम्ब कारण कवनि॥ 5॥

कियो भौनतैं गौन, मिटी आरति संसारी।
राह आन तुम ध्यान, फिकर भाजी दुःखकारी॥
देखे श्री जिनराज, पाप मिथ्यात विलायो।
पूजाश्रुति बहु भगति, करत सम्यक् गुण आयो॥
इस मारवाड़ संसार में, कल्पवृक्ष तुम दरश है।
प्रभु मोहि देहु भौ भौ विषैं, यह वाँछा मम सरस है॥ 6॥

जय जय श्री जिनदेव, सेव तुमरी अघनाशक।
जय जय श्री जिनदेव, भेव षट्द्रव्य-प्रकाशक॥
जय जय श्री जिनदेव, एक जो प्रानी ध्यावै।
जय जय श्री जिनदेव, टेव अहमेव मिटावै॥
जय जय श्री जिनदेव प्रभु, हेत करम-रिपु दलन कौं।
हूजै सहाय सँघ रायजी, हम तयार सिव-चलन कौं॥ 7॥

जय जिनंद आनंदकंद, सुरवृंद वंद्य पद।
ज्ञानवान सब जान, सुगुन मनिखान आन पद॥

दीनदयाल कृपाल भविक भौ जाल निकालक।
आप बूझ सब सूझ, गूझ नहिं बहुजन पालक॥
प्रभु दीनबन्धु करुणामयी, जग उधरन तारन तरन।
दुःख रास निकास स्वदास कौं, हमें एक तुम ही सरन॥ 8॥

देख नीक लखि रूप, वंदिकरि वंदनीक हुव।
पूजनीक पद पूज ध्यान करि ध्यावनीक ध्रुव॥
हरष बढ़ाय बजाय, गाय जस अन्तरजामी।
दरब चढ़ाय अघाय, पाप संपति निधि स्वामी॥
तुम गुण अनेक मुख एक सौं, कौन भाँति वरनन करौं।
मन-वचन-काय बहु प्रीति सौं, एक नाम ही सौं तरौं॥ 9॥

चैत्यालय जो करै, धन्य सो श्रावक कहिये।
तामैं प्रतिमा धरै, धन्य सौ भी सरदहिये॥
जो दोनों विस्तरै, संघ नायक ही जानौं।
बहुत जीव को धर्म मूल कारन सरधानो॥
इस दुखमकाल विकराल में, तेरो धर्म जहाँ चले।
हे नाथ! काल चौथो तहाँ, ईतिभीति सब ही टलै॥ 10॥

दर्शन दशक कवित्त चित्त सौं पढ़ै त्रिकालं।
प्रीतम सनमुख होय, खोय चिंता गृह जालं॥
सुख में निसि-दिन जाय, अन्त सुरराय कहावै।
सुर कहाय शिवपाय, जनम-मृतु-जरा मिटावै॥
धनि जैन-धर्म दीपक प्रकट, पाप तिमिर छयकार है।
लखि 'साहिबराय' सु आँख सौं, सरधा तारनहार है॥ 11॥

देव-स्तुति

(हरिगीतिका)

प्रभु पतित पावन, मैं अपावन, चरण आयो शरण जी।
यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन-मरण जी॥

तुम ना पिछान्यो आन मान्यो, देव विविध प्रकार जी।
या बुद्धिसेती निज न जान्यो, भ्रम गिन्यो हितकार जी॥

भव विकट वन में करम वैरी, ज्ञान धन मेरो हरयो।
तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिर्‌यो॥

धन घड़ी यो धन दिवस यो ही, धन जनम मेरो भयो।
अब भाग मेरो उदय आयो, दरश प्रभु को लख लयो॥

छवि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नासा पै धरैं।
वसु प्रातिहार्य अनन्त गुण जुत, कोटि रवि छवि को हरैं॥

मिट गयो तिमिर मिथ्यात मेरो, उदय रवि आतम भयो।
मो उर हरष ऐसो भयो, मनु रंक चिंतामणि लयो॥

मैं हाथ जोड़ नवाय मस्तक, वीनऊँ तुम चरन जी।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहु तारन-तरन जी॥

जाचूँ नहीं सुरवास पुनि, नरराज परिजन साथ जी।
'बुध' जाचहुँ तुव भक्ति भव-भव, दीजिये शिवनाथ जी॥

दर्शन-स्तुति

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया।
अब तक तुमको बिन जाने, दुख पाये निज गुण हाने॥
पाये अनंते दु:ख अब तक, जगत को निज जानकर।
सर्वज्ञ भाषित जगत हितकर, धर्म नहिं पहिचान कर॥
भव बंधकारक सुख प्रहारक, विषय में सुख मानकर।
निज पर विवेचक ज्ञानमय, सुखनिधि-सुधा नहिं पानकर॥1॥
तव पद मम उर में आये, लखि कुमति विमोह पलाये।
निज ज्ञान कला उर जागी, रुचि पूर्ण स्वहित में लागी॥
रुचि लगी हित में आत्म के, सत्संग में अब मन लगा।
मन में हुई अब भावना, तव भक्ति में जाऊँ रँगा॥
प्रिय वचन की हो टेव, गुणिगण गान में ही चित पगै।
शुभ शास्त्र का नित हो मनन, मन दोष वादनतैं भगै॥2॥
कब समता उर में लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर।
ममतामय भूत भगाकर, मुनिव्रत धारूँ वन जाकर॥
धरकर दिगम्बर रूप कब, अठ-बीस गुण पालन करूँ।
दो-बीस परिषह सह सदा, शुभ धर्म दस धारन करूँ॥
तप तपूँ द्वादश विधि सुखद नित, बंध आस्रव परिहरूँ।
अरु रोकि नूतन कर्म संचित, कर्म रिपु को निर्जरूँ॥3॥
कब धन्य सुअवसर पाऊँ, जब निज में ही रम जाऊँ।
कर्तादिक भेद मिटाऊँ, रागादिक दूर भगाऊँ॥
कर दूर रागादिक निरन्तर आत्म को निर्मल करूँ।
बलज्ञान दर्शनसुख अतुल, लहि चरित क्षायिक आचरूँ॥
आनन्दकन्द जिनेन्द्र बन, उपदेश को नित उच्चरूँ।
आवे 'अमर' कब सुखद दिन, जब दुखद भवसागर तरूँ॥4॥

दर्शन-स्तुति

(दोहा)

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानंद रसलीन।
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरि-रज-रहस विहीन॥1॥

(पद्धरि छन्द)

जय वीतराग-विज्ञानपूर, जय मोहतिमिर को हरन सूर।
जय ज्ञान अनंतानंत धार, दृग-सुख-वीरजमण्डित अपार॥ 2॥

जय परमशांत मुद्रा समेत, भविजन को निज अनुभूति हेत।
भवि भागन वचजोगे वशाय, तुम धुनि है सुनि विभ्रम नशाय॥ 3॥

तुम गुण चिंतत निजपर विवेक, प्रकटैं विघटैं आपद अनेक।
तुम जगभूषण दूषणविमुक्त, सब महिमायुक्त विकल्पमुक्त॥ 4॥

अविरुद्ध शुद्ध चेतन स्वरूप, परमात्म परम पावन अनूप।
शुभ अशुभविभावअभाव कीन, स्वाभाविकपरिणतिमय अछीन॥ 5॥

अष्टादश दोष विमुक्त धीर, स्वचतुष्टयमय राजत गंभीर।
मुनिगणधरादि सेवत महंत, नव केवललब्धिरमा धरंत॥6॥

तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गये जाहिं जैहें सदीव।
भवसागर में दुख छार वारि, तारन को और न आप टारि॥ 7॥

यह लखि निजदुखगद हरणकाज, तुम ही निमित्तकारण इलाज।
जाने तातैं मैं शरण आय, उचरों निज दुख जो चिर लहाय॥8॥

मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप, अपनाये विधि-फल-पुण्य-पाप।
निज को परको करता पिछान, पर में अनिष्टता इष्ट ठान॥ 9॥

आकुलित भयो अज्ञान धारि, ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि।
तन परिणति में आपो चितार, कबहूँ न अनुभवो स्वपदसार॥ 10॥

तुमको बिन जाने जो कलेश, पाये सो तुम जानत जिनेश।
पशु नारक नर सुरगति मँझार, भव धर-धर मर्‌यो अनंत बार॥ 11॥

अब काललब्धि बलतैं दयाल, तुम दर्शन पाय भयो खुशाल।
मन शांत भयो मिटि सकल द्वन्द्व, चाख्यो स्वातमरस दुख निकंद॥ 12॥

तातैं अब ऐसी करहु नाथ, बिछुरै न कभी तुव चरण साथ।
तुम गुणगण को नहिं छेव देव, जग तारन को तुव विरद एव॥ 13॥

आतम के अहित विषय-कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय।
मैं रहूँ आपमें आप लीन, सो करो होऊँ ज्यों निजाधीन॥ 14॥

मेरे न चाह कछु और ईश, रत्नत्रयनिधि दीजे मुनीश।
मुझ कारज के कारन सु आप, शिव करहु हरहु मम मोहताप॥ 15॥

शशि शांतिकरन तपहरन हेत, स्वयमेव तथा तुम कुशल देत।
पीवत पीयूष ज्यों रोग जाय, त्यों तुम अनुभवतैं भव नशाय॥ 16॥

त्रिभुवन तिहूं काल मँझार कोय, नहिं तुम बिन निज सुखदाय होय।
मो उर यह निश्चय भयो आज, दुख जलधि उतारन तुम जहाज॥ 17॥

(दोहा)

तुम गुणगणमणि गणपति, गणत न पावहिं पार।
'दौल' स्वल्पमति किम कहैं, नमूँ त्रियोग सँभार॥ 18॥

आराधना पाठ

मैं देव नित अरहंत चाहूँ, सिद्ध का सुमिरन करौं।
मैं सूर गुरु मुनि तीन पद ये, साधुपद हिरदय धरौं॥
मैं धर्म करुणामयी चाहूँ, जहाँ हिंसा रंच ना।
मैं शास्त्र ज्ञान विराग चाहूँ, जासु में परपंच ना॥1॥

चौबीस श्री जिनदेव चाहूँ, और देव न मन बसैं।
जिन बीस क्षेत्र विदेह चाहूँ, वंदिते पातक नसैं॥
गिरनार शिखर सम्मेद चाहूँ, चम्पापुरी पावापुरी।
कैलाश श्री जिनधाम चाहूँ, भजत भाजैं भ्रम जुरी॥2॥

नव तत्व का सरधान चाहूँ, और तत्व न मन धरौं।
षट् द्रव्य गुण परजाय चाहूँ, ठीक तासौं भय हरों॥
पूजा परम जिनराज चाहूँ, और देव नहीं कदा।
तिहुँकाल की मैं जाप चाहूँ, पाप नहिं लागे कदा॥3॥

सम्यक्त्व दर्शन ज्ञान चारित्र, सदा चाहूँ भाव सों।
दशलक्षणी मैं धर्म चाहूँ, महा हर्ष उछाव सों॥
सोलह जु कारण दुख निवारण, सदा चाहूँ प्रीति सों।
मैं नित अठाई पर्व चाहूँ, महामंगल रीति सों॥4॥

मैं वेद चारों सदा चाहूँ, आदि अन्त निवाह सों।
पाये धरम के चार चाहूँ, अधिक चित्त उछाह सों।
मैं दान चारों सदा चाहूँ, भुवनवशि लाहो लहूँ।
आराधना मैं चार चाहूँ, अंत में ये ही गहूँ॥5॥

भावना बारह जु भाऊँ, भाव निरमल होत है।
मैं व्रत जु बारह सदा चाहूँ, त्याग भाव उद्योत हैं॥
प्रतिमा दिगम्बर सदा चाहूँ, ध्यान आसन सोहना।
वसुकर्म तैं मैं छुटा चाहूँ, शिव लहूँ जहँ मोह ना॥6॥

मैं साधुजन को संग चाहूँ, प्रीति तिनहीं सों करौं।
मैं पर्व के उपवास चाहूँ, आरम्भ मैं सब परिहरौं॥
इस दुखद पंचमकाल माहीं, कुल श्रावक मैं लह्यौ।
अरु महाव्रत धरि सकौं नाहीं, निबल तन मैंने गह्यौ॥7॥

आराधना उत्तम सदा चाहूँ, सुनो जिनराय जी।
तुम कृपानाथ अनाथ 'द्यानत' दया करना न्याय जी॥
वसुकर्म नाश विकास, ज्ञान प्रकाश मुझको दीजिये।
करि सुगति गमन समाधिमरन, सुभक्ति चरनन दीजिये॥8॥

जिनेन्द्र प्रक्षालः आवश्यक बिन्दु

- जिनेन्द्र प्रक्षाल का उद्देश्य प्रतिमा की स्वच्छता है, स्नान नहीं।
- प्रक्षाल प्रासुक जल से एक बार ही करना चाहिए, बार-बार नहीं।
- प्रक्षाल मात्र पुरुषों द्वारा एवं शुद्ध धोती-दुपट्टा पहिनकर ही करना चाहिए।
- प्रक्षाल के बाद प्रतिमाजी पर जल के कण न रहें- इस पर विशेष ध्यान दें।
- प्रक्षाल, सूर्योदय से पूर्व नहीं करना चाहिए।

—सम्पादक

जलाभिषेक पाठ

(दोहा)

जय जय भगवंते सदा, मंगल मूल महान।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभु, नमौं जोरि जुगपान॥

(अडिल्ल और गीता)

श्री जिन जग में ऐसो को बुधवंत जू।
जो तम गुण वरननि करि पावै अन्त जू॥
इन्द्रादिक सुर चार ज्ञानधारी मुनि।
कहि न सकै तुम गुणगण हे त्रिभुवन धनी॥
अनुपम अमित तुम गुणनि वारिधि ज्यों अलोकाकाश है।
किमि धरै हम उर कोष में सो अकथ गुण-मणिराश है॥
पै जिन! प्रयोजनसिद्धि की तुम नाम ही में शक्ति है।
यह चित्त में सरधान यातें नाम ही में भक्ति है॥ 1॥

ज्ञानावरणी दर्शन-आवरणी भने।
कर्म मोहनी अन्तराय चारों हने॥
लोकालोक विलोक्यो केवलज्ञान में।
इन्द्रादिक के मुकुट नये सुरथान में॥
तब इन्द्र जान्यो अवधि तैं, उठि सुरनयुत वंदत भयौ।
तुम पुण्य को प्रेर्यौ हरि ह्वै मुदित्त धनपति सौं कह्यो॥
अब वेगि जाय रचौ समवसृति सफल सुरपद को करौ।
साक्षात् श्री अरहंत के दर्शन करौ कल्मष हरौ॥ 2॥

ऐसे वचन सुने सुरपति के धनपति।
चल आयो तत्काल मोद धारैं अति॥

वीतराग छवि देखि शब्द जय-जय कह्यौ।
देय प्रदच्छिना बार-बार वदंत भयौ॥

अति भक्ति भीनो नम्रचित ह्वै समवशरण रच्यो सही।
ताकी अनूपम शुभ गति को कहन समरथ कोउ नहीं॥

प्राकार तोरण सभामंडप कनक मणिमय छाजहीं।
नगजड़ित गंधकुटी मनोहर मध्यभाग विराजहीं॥ 3॥

सिंहासन तामध्य बन्यौ अद्भुत दिपै।
ता पर वारिज रच्यो प्रभा दिनकर छिपै॥
तीन छत्र सिर शोभित चौंसठ चमरजी।
महाभक्तियुत ढोरत हैं तहाँ अमरजी॥

प्रभु तरनतारन कमल ऊपर, अन्तरीक्ष विराजिया।
यह वीतराग दशा प्रतच्छ विलोकि, भविजन सुख लिया॥

मुनि आदि द्वादश सभा के भवि जीव मस्तक नायकैं।
बहुभाँति बारम्बार पूजैं, नमैं गुणगण गायकैं॥ 4॥

परमौदारिक दिव्य देह पावन सही।
क्षुधा तृषा चिन्ता भय गद दूषण नहीं॥
जन्म जरा मृति अरति शोक विस्मय नसें।
राग रोष निद्रा मद मोह सबैं खसें॥

श्रम बिना श्रम जलरहित पावन, अमल ज्योति स्वरूपजी।
शरणागतनि की अशुचिता हरि, करत विमल अनूप जी॥

ऐसे प्रभु की शांतमुद्रा को नह्वन जलतैं करैं।
'जस' भक्तिवश मन उक्ति तैं, हम भानु ढिंग दीपक धरैं॥ 5॥

तुम तो सहज पवित्र यही निश्चय भयो।
तुम पवित्रता हेत नहीं मज्जन ठयो॥
मैं मलीन रागादिक मलतैं ह्वै रह्यौ।
महामलिन तन में वसु विधिवश दुख सह्यौ॥
बीत्यो अनंतो काल यह, मेरी अशुचिता ना गई।
तिस अशुचिताहर एक तुम ही, भरहु वांछा चित ठई॥
अब अष्टकर्म विनाश सब मल, दोष-रागादिक हरौ।
तनरूप कारागेह तैं, उद्धार शिववासा करौ॥6॥
मैं जानत तुम अष्टकर्म हरि शिव गये।
आवागमन विमुक्त रागवर्जित भये॥
पर तथापि मेरो मनरथ पूरत सही।
नय-प्रमाण तैं जानि महा साता लही॥
पापाचरण तजि नह्वन करता चित्त में ऐसे धरूँ।
साक्षात् श्री अरहंत का मानो नह्वन परसन करूँ॥
ऐसे विमल परिणाम होते अशुभ नशि शुभबन्ध तैं।
विधि अशुभ नसि शुभ बन्धतैं ह्वै शर्म सबविधि नासतैं॥ 7॥
पावन मेरे नयन भये तुम दरस तैं।
पावन पाणि भये तुम चरननि परस तैं॥
पावन मन है गयो तिहारे ध्यान तैं।
पावन रखना मानी तुम गुण गान तैं॥
पावन भई परजाय मेरी, भयो मैं पूरण धनी।
मैं शक्तिपूर्वक भक्ति कीनी, पूर्णभक्ति नहीं बनी॥
धनि धन्य ते बड़भागि भवि तिन नींव शिवघर की धरी।
वर क्षीरसागर आदि जल मणि कुम्भभरी भक्ति करी॥ 8॥

विघन-सघन-वन-दाहन दहन प्रचण्ड हो।
मोह-महातम-दलन प्रबल मार्तण्ड हो॥
ब्रह्मा विष्णु महेश आदि संज्ञा धरो।
जगविजयी जमराज नाश ताको करो॥

आनन्दकारण दु:ख निवारण, परममंगलमय सही।
मोसो पतित नहिं और तुमसो, पतित-तार सुन्यो नहीं॥

चिंतामणि पारस कल्पतरु, एक भव सुखकार ही।
तुम भक्ति-नौका जे चढ़े, ते भये भवदधि पार ही॥9॥

तुम भवदधि तैं तरि गये, भये निकल अविकार।
तारतम्य इस भक्ति को, हमैं उतारो पार॥ 10॥

(निर्मल वस्त्र से प्रतिमाजी को साफ कर निम्न श्लोक
बोलकर गन्धोदक ग्रहण करें-)

निर्मलं निर्मलीकरणं पावन पापनाशनम्।
जिनचरणोदकं वंदे अष्टकर्म-विनाशनम्॥

अभिषेक स्तुति

मैंने प्रभु के चरण पखारे।
जनम, जनम के संचित पातक तत्क्षण ही निरवारे॥
प्रासुक जल के कलश श्री जिन प्रतिमा ऊपर ढ़ारे।
वीतराग अरिहंत देव के गूँजे, जय जयकारे॥
चरणाम्बुज स्पर्श करत ही छाये हर्ष अपारे।
पावन तन, मन नयन भये सब दूर भये अंधियारे॥

प्रतिमा प्रक्षाल पाठ

(दोहा)

परिणामों की स्वच्छता, के निमित्त जिनबिम्ब।
इसीलिए मैं निरखता, इनमें निज प्रतिबिम्ब॥
पञ्च प्रभु के चरण में, वन्दन करूँ त्रिकाल।
निर्मल जल से कर रहा, प्रतिमा का प्रक्षाल॥

अथ पौर्वाह्निकदेववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजास्तवन-वन्दनासमेतं श्री पञ्चमहागुरुभक्तिपूर्वककायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(नौ बार णमोकार मन्त्र पढ़ें)

(छप्पय)

तीन लोक के कृत्रिम और अकृत्रिम सारे।
जिनबिम्बों को नित प्रति अगणित नमन हमारे॥
श्री जिनवर की अन्तर्मुख छवि उर में धारूँ।
जिन में निज का, निज में जिनप्रतिबिम्ब निहारूँ॥
मैं करूँ आज संकल्प शुभ, जिन प्रतिमा प्रक्षाल का।
यह भावसुमन अर्पण करूँ, फल चाहूँ गुणमाल का॥

ॐ ह्रीं प्रक्षालप्रतिज्ञायै पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

(प्रक्षाल की प्रतिज्ञा हेतु पुष्प क्षेपण करें।)

(रोला)

अन्तरङ्ग बहिरङ्ग सुलक्ष्मी से जो शोभित।
जिनकी मङ्गल वाणी पर है त्रिभुवन मोहित॥
श्री जिनवर सेवा से क्षय मोहादि विपत्ति।
हे जिन! श्री लिख पाऊँगा निज गुण सम्पत्ति॥

(थाली की चौकी पर केशर से श्री लिखें)

(दोहा)

अन्तर्मुख मुद्रा सहित, शोभित श्री जिनराज।
प्रतिमा प्रक्षालन करूँ, धरूं पीठ यह आज॥

ॐ ह्रीं श्री पीठस्थापनं करोमि।

(प्रक्षाल हेतु थाली स्थापित करें।)

(दोहा)

भक्तिरत्न से जड़ित आज मङ्गल सिंहासन।
भेद-ज्ञान जल से क्षालित भावों का आसन॥
स्वागत है! जिनराज तुम्हारा सिंहासन पर।
हे जिनदेव! पधारो श्रद्धा के आसन पर॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मतीर्थाधिनाथभगवन्निह सिंहासने तिष्ठ तिष्ठ।

(थाली में जिनबिम्ब विराजमान करें।)

क्षीरोदधि के जल से भरे कलश ले आया।
दृग-सुख-वीरज ज्ञानस्वरूपी आतम पाया॥
मङ्गल कलश विराजित करता हूँ जिनराजा।
परिणामों के प्रक्षालन से सुधरें काजा॥

ॐ ह्रीं अर्हं कलशस्थापनं करोमि।

(चारों कोनों में निर्मल जल से भरे कलश स्थापित करें।)

जल-फल आठों द्रव्य मिलाकर अर्घ्य बनाया।
अष्ट अङ्ग युत मानो सम्यग्दर्शन पाया॥
श्री जिनवर के चरणों में यह अर्घ्य समर्पित।
करूँ आज रागादि विकारी भाव विसर्जित॥

ॐ ह्रीं श्री स्नपनपीठस्थिताय जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(पीठस्थित जिनप्रतिमा को अर्घ्य चढ़ायें।)

मैं रागादि विभावों से कलुषित हे जिनवर।
और आप परिपूर्ण वीतरागी हो प्रभुवर॥
कैसे हो प्रक्षाल, जगत के अघक्षालक का।
क्या दरिद्र होगा पालक ? त्रिभुवन पालक का॥
भक्तिभाव के निर्मलजल से अघमल धोता।
है किसका अभिषेक भ्रान्त चित खाता गोता॥
नाथ! भक्तिवश जिनबिम्बों का करूँ न्हवन मैं।
आज करूँ साक्षात् जिनेश्वर का पर्शन मैं॥

(दोहा)

क्षीरोदधि-सम नीर से, करूँ बिम्ब प्रक्षाल।
श्री जिनवर की भक्ति से, जानूँ निज पर चाल॥
तीर्थङ्कर का न्हवन शुभ, सुरपति करें महान।
पञ्चमेरु भी हो गये, महातीर्थ सुखदान॥
करता हूँ शुभभाव से, प्रतिमा का अभिषेक।
बचूँ शुभाशुभभाव से, यही कामना एक॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादिमहावीरपर्यन्तं चतुर्विंशतितीर्थङ्कर परमदेवम् आद्यानामाद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे..... नाम्नि नगरे मासानामुत्तमे .....मासे.....पक्षे.....दिने मुन्यार्यिकाश्रावकश्राविकाणां सकलकर्मक्षयार्थं पवित्रतरजलेन जिनमभिषेचयामि।

(चारों कलशों से अभिषेक करें तथा वादित्र नाद करायें एवं जय-जय शब्दोच्चारण करें।)

(दोहा)

जिन संस्पर्शित नीर यह, गन्धोदक गुण खान।
मस्तक पर धारूँ सदा, बनूँ स्वयं भगवान॥

(मस्तक पर गन्धोदक चढ़ायें। अन्य किसी अङ्ग से गन्धोदक का स्पर्श वर्जित है)

जल-फलादि वसु द्रव्य ले, मैं पूजूँ जिनराज।
हुआ बिम्ब अभिषेक अब, पाऊँ निज पद राज॥
ॐ ह्रीं अभिषेकान्ते वृषभादिवीरान्तेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री जिनवर का धवलयश, त्रिभुवन में है व्याप्त।
शान्ति करे मम चित्त में, हे परमेश्वर आप्त॥
(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(रोला)
जिनप्रतिमा पर अमृतसम, जलकण अतिशोभित।
आत्म-गगन में गुण अनन्त तारे, भवि मोहित॥
हो अभेद का लक्ष्य, भेद का करता वर्जन।
शुद्ध वस्त्र से जल-कण का, करता परिमार्जन॥
(प्रतिमा को शुद्ध वस्त्र से पोंछें।)

(दोहा)
श्री जिनवर की भक्ति से, दूर होय भव-भार।
उर-सिंहासन थापिये, प्रिय चैतन्यकुमार॥
(जिनप्रतिमा को सिंहासन पर विराजमानकरें तथा निम्न छन्द बोलकर अर्घ्य चढ़ायें।)

(दोहा)
जल गन्धादिक द्रव्य से, पूजूँ श्री जिनराज।
पूर्ण अर्घ्य अर्पित करूँ, पाऊँ चेतनराज॥
ॐ ह्रीं श्री पीठस्थितजिनाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निम्न श्लोक बोलकर गन्धोदक ग्रहण करें
निर्मलं निर्मलीकरणं पावनं पापानाशनम्।
जिनचरणोदकं वन्दे अष्टकर्मविनाशनम्

विनय पाठ

(दोहा)

इह विधि ठाड़ो होय के, प्रथम पढ़ै जो पाठ।
धन्य जिनेश्वर देव तुम, नाशे कर्म जु आठ॥ 1॥

अनन्त चतुष्टय के धनी, तुम ही हो सरताज।
मुक्तिवधु के कन्त तुम, तीन भुवन के राज॥ 2॥

तिहुँ जग की पीड़ा हरन, भवदधि-शोषणहार।
ज्ञायक हो तुम विश्व के, शिव-सुख के करतार॥ 3॥

हरता अघ अँधियार के, करता धर्म प्रकाश।
थिरता-पद दातार हो, धरता निजगुण रास॥ 4॥

धर्मामृत उर जलधि सौं, ज्ञानभानु तुम रूप।
तुमरे चरण-सरोज को, नावत तिहुँ-जग भूप॥ 5॥

मैं वन्दौं जिनदेव को, करि अति निर्मल भाव।
कर्म-बन्ध के छेदने, और न कछु उपाव॥ 6॥

भविजन कौं भव-कूप तैं, तुम ही काढ़नहार।
दीन-दयाल अनाथ पति, आतम गुण भण्डार॥ 7॥

चिदानन्द निर्मल कियो, धोय कर्म-रज मैल।
सरल करी या जगत में, भविजन को शिव-गैल॥ 8॥

तुम पद-पंकज पूजतैं, विघ्न-रोग टर जाय।
शत्रु मित्रता को धरैं, विष निरविषता थाय॥ 9॥

चक्री सुरखग इन्द्र पद, मिलैं आप तैं आप।
अनुक्रम करि शिवपद लहैं, नेम सकल हनि पाप॥ 10॥

तुम बिन मैं व्याकुल भयो, जैसे जल बिन मीन।
जन्म-जरा मेरी हरो, करो मोहि स्वाधीन॥ 11॥

पतित बहुत पावन किये, गिनती कौन करेव।
अञ्जन से तारे कुधी, जय जय जय जिनदेव॥ 12॥

थकी नाव भवदधि विषैं, तुम प्रभु पार करेय।
खेवटिया तुम हो प्रभु, जय जय जय जिनदेव॥ 13॥

रागसहित जग में रुल्यो, मिले सरागी देव।
वीतराग भेट्यो अबै, मेटो राग कुटेव॥ 14॥

कित निगोद कित नारकी, कित तिर्यञ्च अजान।
आज धन्य मानुष भयो, पायो जिनवर थान॥ 15॥

तुमको पूजैं सुरपती, अहिपति, नरपति देव।
धन्य भाग्य मेरो भयो, करन लग्यो तुम सेव॥ 16॥

अशरण के तुम शरण हो, निराधार आधार।
मैं डूबत भव-सिन्धु में खेव लगाओ पार॥ 17॥

इन्द्रादिक गणपति थके, कर विनती भगवान।
अपनो विरद निहारिकै, कीजे आप समान॥ 18॥

तुम्हरी नेक सुदृष्टि तैं, जग उतरत है पार।
हा हा डूब्यो जात हौं, नेक निहार निकार॥ 19॥

जो मैं कहहूँ और सौं, तो न मिटै उरझार।
मेरी तो तोसौं बनी, यातैं करौं पुकार॥ 20॥

वंदौं पाँचों परमगुरु, सुरगुरु वन्दत जास।
विघनहरन मङ्गलकरण, पूरन परम प्रकाश॥ 21॥

चौबीसों जिनपद नमों, नमों शारदा माय।
शिवमग साधक साधु नमि, रच्यौ पाठ सुखदाय॥ 22॥

पूजा पीठिका (संस्कृत)

ॐ जय जय जय। नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।
णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं॥

ॐ ह्रीं अनादि-मूल-मन्त्रेभ्यो नमः पुष्पांजलिं क्षिपामि।

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं, केवलि-पण्णत्तो धम्मो मंगलं।
चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा, केवलि-पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि,
केवलि-पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा। (पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।)

मङ्गल विधान

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा।
ध्यायेत्पञ्च-नमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ 1॥

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् परमात्मानं स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः॥ 2॥

अपराजित-मन्त्रोऽयं सर्व-विघ्न-विनाशनः।
मङ्गलेषु च सर्वेषु प्रथमं मङ्गलं मतः॥ 3॥

एसो पञ्च णमोयारो सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होई मंगलं॥ 4॥

अर्ह मित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम्॥ 5॥

कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मीनिकेतनम्।
सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम्॥ 6॥

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनी-भूतपन्नगाः।
विषं निर्विषतां-याति स्तूयमाने जिनेश्वरे॥ 7॥

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

सहस्त्रनाम का अर्घ्य

उदक-चन्दन-तन्दुल-पुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घ्यकैः।
धवल-मङ्गल-गान-रवाकुले जिनगृहे जिननाथमहं यजे॥ 3॥

ॐ ह्रीं श्री भगवज्जिनसहस्त्रनामेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

पूजा प्रतिज्ञा पाठ

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवंद्य जगत्त्रयेशं,
स्याद्वाद-नायकमनन्त-चतुष्टयार्हम्।
श्रीमूलसंघ-सुदृशां सुकृतैकहेतु,
जैनेन्द्र-यज्ञ-विधिरेष मयाऽभ्यधायि॥ 1॥

स्वस्ति त्रिलोक गुरवे जिनपुङ्गवाय,
स्वस्ति स्वभाव-महिमोदय-सुस्थिताय।
स्वस्ति प्रकाश-सहजोर्जित-दृङ्मयाय,
स्वस्ति प्रसन्नललिताद्भुत-वैभवाय॥ 2॥

स्वस्त्युच्छलद्विमल-बोध सुधा-प्लवाय,
स्वस्ति स्वभाव-परभावविभासकाय।
स्वस्ति त्रिलोक विततैकचिदुद्गमाय,
स्वस्ति त्रिकाल-सकलायतविस्तृताय॥ 3॥

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं,
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगंतुकामः।
आलंबनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्,
भूतार्थ-यज्ञ-पुरुषस्य करोमि यज्ञम् ॥ 4 ॥

अर्हन् पुराणपुरुषोत्तम पावनानि,
वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव।
अस्मिञ्ज्वलद्विमल-केवल-बोधवह्नौ,
पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥ 5 ॥

(ॐ यज्ञविधिप्रतिज्ञायै जिनप्रतिमाग्रे पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।)

स्वस्तिमंगलविधानम्

श्रीवृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजितः।
श्रीसम्भवः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअभिनन्दनः ॥

श्रीसुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः।
श्रीसुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीचन्द्रप्रभः ॥

श्रीपुष्पदन्तः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतलः।
श्रीश्रेयांसः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवासुपूज्यः ॥

श्रीविमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअनन्तः।
श्रीधर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशान्तिः ॥

श्रीकुन्थुः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरनाथः।
श्रीमल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रतः ॥

श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथः।
श्रीपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवर्द्धमानः ॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

परमर्षि स्वस्ति मंगलपाठ

(प्रत्येक श्लोक के बाद पुष्प क्षेपण करें)

नित्याप्रकम्पाद्भुत-केवलौघाः स्फुरन्मनः पर्यय-शुद्धबोधाः।
दिव्यावधिज्ञान-बलप्रबोधाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥ 1॥
कोष्ठस्थ-धान्योपममेकबीजं संभिन्न-संश्रोतृ-पदानुसारि।
चतुर्विधं बुद्धिबलं दधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥ 2॥
संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरादास्वादन-घ्राण-विलोकनानि।
दिव्यान्मतिज्ञान-बलाद्वहन्तः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥ 3॥
प्रज्ञाप्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः प्रत्येकबुद्धा दशसर्वपूर्वैः।
प्रवादिनोऽष्टाङ्गनिमित्तविज्ञाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥ 4॥
जङ्घावलि-श्रेणि-फलाम्बु-तन्तु-प्रसून-बीजांकुर-चारणाह्वः।
नभोऽङ्गणस्वैर-विहारिणश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥ 5॥
अणिम्निदक्षाः कुशलामहिम्नि लघिम्निशक्ताः कृतिनो गरिम्णि।
मनो-वपुर्वाग्बलिनश्च नित्यं स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥ 6॥
सकामरूपित्व-वशित्वमैश्यं प्रकाम्यमन्तर्द्धिमथाप्तिमाप्ताः।
तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥ 7॥
दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं घोरं तपो घोरपराक्रमस्थाः।
ब्रह्मापरं घोर गुणाश्चरन्तः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥ 8॥
आमर्ष-सर्वौषधयस्तथाशीर्विषं-विषा दृष्टिविषं विषाश्च।
सखिल्ल-विड्जल्ल-मलौषधीशाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥ 9॥
क्षीरं स्रवन्तोऽत्र घृतं स्रवन्तो मधुस्रवन्तोऽप्यमृतं स्रवन्तं।
अक्षीणसंवास-महानसाश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥ 10॥

(इति परमर्षिस्वस्मिङ्गलविधानं पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

पूजा पीठिका (हिन्दी)

ॐ जय जय जय। नमोऽस्तु नमोस्तु नमोस्तु।
अरहन्तों को नमस्कार है, सिद्धों को सादर वन्दन।
आचार्यों को नमस्कार है, उपध्याय को है वन्दन॥
और लोक के सर्वसाधुओं को, है विनय सहित वन्दन।
पञ्च परम परमेष्ठी प्रभु को, बार-बार मेरा वन्दन॥

ॐ ह्रीं श्री अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नमः पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

(वीरछन्द)

मङ्गल चार , चार हैं उत्तम, चार शरण में जाऊँ मैं।
मन-वच-काय त्रियोगपूर्वक, शुद्ध भावना भाऊँ मैं॥

श्री अरहन्त देव मङ्गल हैं, श्री सिद्ध प्रभु हैं मङ्गल।
श्री साधु मुनि मङ्गल हैं, है केवलि कथित धर्म मङ्गल॥

श्री अरहन्त लोक में उत्तम, सिद्ध लोक में है उत्तम।
साधु लोक में उत्तम हैं, है केवलि कथित धर्म उत्तम॥

श्री अरहन्त शरण में जाऊँ, सिद्ध शरण में मैं जाऊँ।
साधु शरण में जाऊँ, केवलिकथित धर्मशरणा जाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्रीनमोऽर्हते स्वाहा, पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

मङ्गल विधान

अपवित्र हो या पवित्र जो, णमोकार को ध्याता है।
चाहे सुस्थित हो या दुस्थित, पाप-मुक्त हो जाता है॥ 1॥

हो पवित्र-अपवित्र दशा, कैसी भी क्यों नहिं हो जन की।
परमातम का ध्यान किये, हो अन्तर बाहर शुचि उनकी॥ 2॥

है अजेय विघ्नों का हर्ता, णमोकार यह मंत्र रहा।
सब मङ्गल में प्रथम सुमङ्गल, श्री जिनवर ने एम कहा॥ 3॥

सब पापों का है क्षयकारक, मङ्गल में सबसे पहला।
नमस्कार या णमोकार यह, मंत्र जिनागम में पहला॥ 4॥

अर्हं ऐसे परं ब्रह्म-वाचक, अक्षर का ध्यान करूँ।
सिद्धचक्र का सद्बीजाक्षर, मन-वच-काय प्रणाम करूँ॥ 5॥

अष्ट कर्म से रहित मुक्ति-लक्ष्मी के घर श्री सिद्ध नमूँ।
सम्यक्त्वादि गुणों से संयुत, तिन्हें ध्यान धर कर्म वमूँ॥ 6॥

जिनवर की भक्ति से होते, विघ्न समूह अन्त जानो।
भूत शाकिनी सर्प शान्त हो, विष निर्विष होता मानों॥ 7॥

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

जिनसहस्त्रनाम का अर्घ्य

मैं प्रशस्त मङ्गल गानों से युक्त जिनालय माँहि यजूँ।
जल चन्दन अक्षत प्रसून चरु, दीप धूप फल अर्घ्य सजूँ॥

ॐ ह्रीं श्री भगवज्जिनसहस्त्रनामेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजा प्रतिज्ञा पाठ

(तातंक)

स्याद्वाद वाणी के नायक, श्री जिन को मैं नमन कराय।
चार अनन्त चतुष्टयधारी, तीन जगत् के ईश मनाय॥
मूल संघ के सम्यग्दृष्टि, उनके पुण्य कमावन काज।
करूँ जिनेश्वर की यह पूजा, धन्य भाग्य है मेरा आज॥ 1॥

तीन लोक के गुरु जिन-पुङ्गव, महिमा सुन्दर उदित हुई।
सहज प्रकाशमयी दृगज्योति, जगजन के हित मुदित हुई॥
समवशरण का अद्भुत वैभव, ललित प्रसन्न करी शोभा।
जग-जन का कल्याण करे अरु, क्षेम कुशल हो मन लोभा॥ 2॥
निर्मल बोध सुधा-सम प्रकटा, स्व-पर विवेक करावनहार।
तीनलोक में प्रथित हुआ जो, वस्तु त्रिजग प्रकटावनहार॥
ऐसा केवलज्ञान करे, कल्याण सभी जगतीतल का।
उसकी पूजा रचूँ आज मैं, कर्म बोझ करने हलका॥ 3॥
द्रव्यशुद्धि अरु भावशुद्धि, दोनों विधि का अवलम्बन कर।
करूँ यथार्थ पुरुष की पूजा, मन-वच-तन एकत्रित कर॥
पुरुष-पुराण जिनेश्वर अर्हन्, एकमात्र वस्तु का स्थान।
उसकी केवल-ज्ञान वह्नि में, करूँ समस्त पुण्य आह्वान॥ 4॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।)

स्वस्ति मंगल पाठ

(चौपाई)

ऋषभदेव कल्याणकराय, अजित जिनेश्वर निर्मल थाय।
स्वस्ति करें सम्भव जिनराय, अभिनन्दन के पूजों पाय॥ 1॥
स्वस्ति करें श्री सुमति जिनेश, पद्म-प्रभ पद पद्म विशेष।
श्री सुपार्श्व स्वस्ति के हेतु, चन्द्रप्रभु जन तारन सेतु॥ 2॥
पुष्पदन्त कल्याण सहाय, शीतल शीतलता प्रकटाय।
श्री श्रेयांस स्वस्ति के श्वेत, वासुपूज्य शिव साधन हेत॥ 3॥
विमलनाथ पद विमल कराय, श्री अनन्त आनन्द बताय।
धर्मनाथ शिव शर्म कराय, शान्ति विश्व में शान्ति कराय॥ 4॥

कुन्थु और अरजिन सुखरास, शिवमग में मङ्गलमय आश।
मल्लि और मुनिसुव्रत देव, सकल कर्मक्षय कारण एव॥ 5॥

श्री नमि और नेमि जिनराज, करें सुमङ्गलमय सब काज।
पार्श्वनाथ तेवीसम ईश, महावीर वन्दों जगदीश॥ 6॥

ये सब चौबीसों महाराज , करें भव्य जन मङ्गल काज।
मैं आयो पूजन के काज, राखो श्री जिन मेरी लाज॥ 7॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

नाथ तुम्हारी पूजा में सब, स्वाहा करने आया।
तुम जैसा बनने के कारण, शरण तुम्हारी आया॥ टेक॥

पञ्चेन्द्रिय का लक्ष्य करूँ में, इस अग्नि में स्वाहा।
इन्द्र नरेन्द्रों के वैभव की, चाह करूँ मैं स्वाहा॥
तेरी साक्षी से अनुपम मैं, यज्ञ रचाने आया॥ 1॥

जग की मान प्रतिष्ठा को भी, करना मुझको स्वाहा।
नहीं मूल्य इस मन्द भाव का, व्रत तप आदि स्वाहा॥
वीतराग के पथ पर चलने का, प्रण लेकर आया॥ 2॥

अरे जगत के अपशब्दों को, करना मुझको स्वाहा।
पर लक्ष्यी सब ही वृत्ती को, करना मुझको स्वाहा॥
अक्षय निरंकुश पद पाने और पुण्य लुटाने आया॥ 3॥

तुम हो पूज्य पुजारी मैं, यह भेद करूँगा स्वाहा।
बस अभेद में तन्मय होना, और सभी कुछ स्वाहा॥
अब पामर भगवान बने, यह सीख सीखाने आया॥ 4॥

परमर्षि स्वस्ति मंगलपाठ (हिन्दी)

(गीतिका)

नित्य अद्‌भुत अचल केवल, ज्ञानधारी जे मुनी।
मनः पर्याय ज्ञानधारक, यती तपसी वा गुणी॥
दिव्य अवधिज्ञान धारक, श्री ऋषीश्वर को नमूँ।
कल्याणकारी लोक में, कर पूज वसु विधि को वमूँ॥1॥
कोष्ठस्थ धान्योपम कही, अरु एक बीज कही प्रभो।
संभिन्न संश्रोतृ पदानुसारी, बुद्धि ऋद्धि कही विभो॥
ये चार ऋद्धीधर यतीश्वर, जगत जन मंगल करें।
अज्ञान-तिमिर विनाश कर, कैवल्य में लाकर धरें॥2॥
दिव्य मति के बल ग्रहण, करते स्पर्शन घ्राण को।
श्रवण आस्वादन करें, अवलोकते कर त्राण को॥
पंच इंद्री की विजय, धारण करें जो ऋषिवरा।
स्वर-पर का कल्याण कर, पायें शिवालय ने त्वरा॥3॥
प्रज्ञा प्रधाना श्रमण, अरु प्रत्येक बुद्धि जो कही।
अभिन्न दश पूर्वी चतुर्दश-पूर्व प्रकृष्ट वादी सही॥
अष्टांग महा निमित्त विज्ञा, जगत का मंगल करें।
उनके चरण में अहर्निश, यह दास अपना शिर धरे॥4॥
जंघावलि अरु श्रेणि तंतु, फलांबु बीजांकुर प्रसून।
ऋद्धि चारण धार के मुनि, करत आकाशी गमन॥
स्वच्छंद करत विहार नभ में, भव्यजन के पीर हर।
कल्याण मेरा भी करें, मैं शरण आया हूँ प्रभुवर ॥5॥

अणिमा जु महिमा और गरिमा, में कुशल श्री मुनिवरा।
ऋद्धि जु महिमा और गरिमा, में कुशल श्री मुनिवरा॥
हैं यदपि ये ऋद्धिधारी, पर नहीं पद झलकता।
उनके चरण के यजन हित, इस दास का मन ललकता॥ 6॥
ईशत्व और वशित्व, अन्तर्धान आप्ति जिन कही।
कामरूपी और अप्रतिघात, ऋषि पुंगव लही॥
इन ऋद्धि-धारक मुनिजनों को, सतत वंदन मैं करूँ।
कल्याणकारी जो जगत में, सेय शिव-तिय को वरूँ॥ 7॥
दीप्ति तप्ता महा घोरा, उग्र घोर पराक्रमा।
ब्रह्मचारी ऋद्धिधारी, वनविहारी अघ वमा॥
ये घोर तपधारी परम गुरु सर्वदा मंगल करें।
भव डूबते इस अज्ञजन को, तार तीरहि ले धरें॥ 8॥
आमर्ष औषधि आषि विष, अरु दृष्टि विष सर्वौषधि।
खिल्ल औषधि जल्ल औषधि, विडौषधि मल्लौषधि॥
ये ऋद्धिधारी महा मुनिवर, सकल संघ मंगल करें।
जिनके प्रभाव सभी सुखी हों, और भव-जलनिधि तरें॥ 9॥
क्षीरस्रावी मधुस्रावी घृतस्रावी मुनि यशी।
अमृतस्रावी ऋद्धिवर, अक्षीण संवास महानसी॥
ये ऋद्धिधारी सब मुनीश्वर, पाप मल को परिहरैं।
पूजा विधि के प्रथम अवसर, आ सफल पूजा करें॥ 10॥
कर जोड़ दस 'गुलाब' करता, विनय चरणन में खड़ा।
सम्यक्त्व दरशन-ज्ञान-चारित्र, दीजिये सबसे बड़ा॥
जबतक न हो संसार पूरा, चरण में रत नित रहें।
वसुकर्म क्षयकर शिवलहें, बस और कुछ नाहीं चहें॥ 11॥

(इति परमर्षिस्वस्तिमंगलविधानं पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजा

(अडिल्ल)

प्रथम देव अरहंत सुश्रुत सिद्धान्त जू।
गुरु निरग्रंथ महंत मुकतिपुर-पंथ जू॥
तीन रतन जगमाँहि सु ये भवि ध्याइये।
तिनकी भक्ति-प्रसाद परम-पद पाइये॥

(दोहा)

पूजों पद अरहंत के, पूजों गुरुपद सार।
पूजों देवी सरस्वती, नित प्रति अष्ट प्रकार॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति आह्वाननम्। ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्। ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(हरिगीतिका एवं दोहा)

सुरपति उरग नरनाथ तिन करि, वन्दनीक सुपदप्रभा।
अति शोभनीक सुवरण उज्ज्वल, देख छवि मोहित सभा॥
वह नीर क्षीर-समुद्र घट भरि, अग्र तसु बहुविधि नचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।
मलिन वस्तु हर लेत सब, जल-स्वभाव मल छीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जे त्रिजग-उदर मँझार प्रानी, तपत अति दुद्धर खरे।
तिन अहित-हरन सुवचन जिनके, परम शीतलता भरे॥
तसु भ्रमर-लोभित घ्राण पावन, सरस चन्दन घसि सचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
चन्दन शीतलता करै, तपत वस्तु परवीन।

जासों पूजों परमपद, देवशास्त्र गुरु तीन॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

यह भव-समुद्र अपार तारण, के निमित्त सुविधि ठई।
अति दृढ़ परम पावन जथारथ, भक्ति वर नौका सही॥
उज्ज्वल अखंडित सालि तंदुल, पुंज धरि त्रयगुण जचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
तंदुल सालि सुगंधि अति, परम अखंडित बीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

जे विनयवंत सुभव्य-उर-अंबुज प्रकाशन भानु हैं।
जे एक मुख चारित्र भाषत, त्रिजग माहिं प्रधान हैं।
लहि कुन्द-कमलादिक पहुप, भव-भव कुवेदन सों बचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
विविध भाँति परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अति सबल मद-कंदर्प जाको, क्षुधा-उरग अमान हैं।
दुस्सह भयानक तासु नाशन, को सुगरुड़ समान हैं।
उत्तम छहों रस युक्त नित, नैवेद्य करि घृत में पचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
नानाविधि संयुक्तरस, व्यंजन सरस नवीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जे त्रिजग-उद्यम नाश कीने, मोह-तिमिर महाबली।
तिहि कर्मघाती ज्ञानदीप-प्रकाशज्योति प्रभावली।

इह भाँति दीप प्रजाल कंचन, के सुभाजन में खचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
स्व-परप्रकाशक ज्योति अति, दीपक तमकरि हीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जो कर्म-ईंधन दहन अग्निसमूह-सम उद्धत लसै।
वर धूप तासु सुगंधिताकरि, सकल परिमलता हँसै॥
इह भाँति धूप चढ़ाय नित भव ज्वलन माहिं नहीं पचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
अग्निमाहिं परिमल दहन, चंदनादि गुणलीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

लोचन सुरसना घ्राण उर, उत्साह के करतार हैं।
मोपै न उपमा जाय वरणी, सकल फल गुणसार हैं।
सो फल चढ़ावत अर्थपूरन, परम अमृतरस सचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
जे प्रधान फल-फल विषैं, पंचकरण-रस-लीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्ष फलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल परम उज्ज्वल गन्ध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूँ।
वर धूप निर्मल फल विविध बहु, जनम के पातक हरूँ।
इह भाँति अर्घ्य चढ़ाय नित भवि,करत शिव-पंकति मचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
वसुविधि अर्घ्य संजोय कै, अति उछाह मन कीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

देव-शास्त्र-गुरुरतन शुभ, तीन रतन करतार।
भिन्न-भिन्न कहुँ आरती, अल्प सुगुण विस्तार ॥1॥

(पद्धरि छंद)

चउ कर्मसु सु त्रेसठ प्रकृति नाशि, जीते अष्टादश दोषराशि।
जे परम सुगुण हैं अनंत धीर, कहवत के छ्यालिसगुणगंभीर ॥2॥
शुभ समवशरण शोभा अपार, शत इन्द्र नमत कर सीस धार।
देवाधिदेव अरहन्त देव, वन्दौं मन-वच-तन कर सुसेव ॥3॥
जिनकी धुनि ह्वै ओंकाररूप, निर-अक्षरमय महिमा अनूप।
दश-अष्ट महाभाषा समेत, लघु भाषा सात शतक सुचेत ॥4॥
सो स्याद्वादमय सप्तभंग, गणधर गूँथे बारह सुअंग।
रवि-शशि न हरै सो तम हराय, सो शास्त्र नमों बहु प्रीति ल्याय ॥5॥
गुरु आचारज उवझाय साधु तन नगन रत्नत्रय निधि अगाध।
संसार देह वैराग धार, निरवांछि तपै शिव-पद निहार ॥6॥
गुण छत्तिस पच्चिस आठ-बीस, भव-तारन-तरन जिहाज ईस।
गुरु की महिमा वरनी न जाय, गुरुनाम जपों मन-वचन-काय ॥7॥

(सोरठा)

कीजे शक्ति प्रमान, शक्ति बिना सरधा धरै।
'द्यानत' सरधावान, अजर-अमर पद भोगवै ॥8॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालामहाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजा

(वीरछन्द)

केवल रवि किरणों से जिसका, सम्पूर्ण प्रकाशित है अन्तर।
उस श्री जिनवाणी में होता, तत्त्वों का सुन्दरतम दर्शन॥
सद्दर्शन-बोध-चरण-पथ पर, अविरल जो बढ़ते हैं मुनिगण।
उन देव परम-आगम गुरु को, शत शत वन्दन, शत शत वन्दन॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति आह्वानम्।
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

इन्द्रिय के भोग मधुर विष-सम, लावण्यमयी कंचन काया।
यह सब कुछ जड़ की क्रीड़ा है, मैं अब तक जान नहीं पाया॥
मैं भूल स्वयं निज वैभव को, पर-ममता में अटकाया हूँ।
अब निर्मल सम्यक् नीर लिये, मिथ्यामल धोने आया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ चेतन की सब परिणति प्रभु! अपने-अपने में होती है।
अनुकूल कहें प्रतिकूल कहें, यह झूठी मन की वृत्ती है॥
प्रतिकूल संयोगों में क्रोधित, होकर संसार बढ़ाया है।
सन्तप्त हृदय प्रभु! चन्दन-सम, शीतलता पाने आया है॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

उज्ज्वल हूँ कुन्द धवल हूँ प्रभु! पर से न लगा हूँ किञ्चित् भी।
फिर भी अनुकूल लगें उन पर, करता अभिमान निरन्तर ही॥
जड़ पर झुक-झुक जाता चेतन, की मार्दव की खण्डित काया।
निज शाश्वत अक्षत निधि पाने, अब दास चरण रज में आया॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

यह पुष्प सुकोमल कितना है, तन में माया कुछ शेष नहीं।
निज अन्तर का प्रभु! भेद कहूँ, उसमें ऋजुता का लेश नहीं॥
चिन्तन कुछ फिर संभाषण कुछ, वृत्ति कुछ की कुछ होती है।
स्थिरता निज में प्रभु पाऊँ जो, अन्तर का कालुष धोती है॥
ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अब तक अगणित जड़द्रव्यों से, प्रभु! भूख न मेरी शान्त हुई।
तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त रही वह रिक्त रही॥
युग-युग से इच्छा सागर में, प्रभु! गोते खाता आया हूँ।
चरणों में व्यञ्जन अर्पित कर, अनुपम रस पीने आया हूँ॥
ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मेरे चैतन्य सदन में प्रभु! चिर व्याप्त भयंकर अँधियारा।
श्रुत-दीप बुझ हे करुणानिधि! बीती नहिं कष्टों की कारा॥
अतएव प्रभो! यह ज्ञान-प्रतीक, समर्पित करने आया हूँ।
तेरी अन्तर लौ से निज अन्तर, दीप जलाने आया हूँ॥
ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्योऽष्टकर्मदहनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़कर्म घुमाता है मुझको, यह मिथ्या-भ्रान्ति रही मेरी।
मैं रागी-द्वेषी हो लेता, जब परिणति होती है जड़ की॥
यो भावकरम या भावमरण, सदियों से करता आया हूँ।
निज अनुपम गन्ध-अनल से प्रभु, पर-गन्ध जलाने आया हूँ॥
ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जग में जिसको निज कहता मैं, वह छोड़ मुझे चल देता है।
मैं आकुल-व्याकुल हो लेता, व्याकुल का फल व्याकुलता है॥

मैं शान्त निराकुल चेतन हूँ, है मुक्ति-रमा सहचर मेरी।
यह मोह तड़क कर टूट पड़े, प्रभु! सार्थक फल पूजा तेरी॥
ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षणभर निजरस को पी चेतन, मिथ्या-मल को धो देता है।
काषायिक भाव विनष्ट किये, निज आनन्द अमृत पीता है॥
अनुपम सुख तब विलसित होता, केवलरवि जगमग करता है।
दर्शन बल पूर्ण प्रगट होता, यह ही अरहन्त अवस्था है॥
यह अर्घ्य समर्पण करके प्रभु! निज गुण का अर्घ्य बनाऊँगा।
और निश्चित तेरे सदृश प्रभु! अरहन्त अवस्था पाऊँगा॥
ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(पद्धरि)

भव-वन में जी भर घूम चुका, कण-कण को जी भर-भर देखा।
मृग-सम मृगतृष्णा के पीछे, मुझको न मिली सुख की रेखा॥

(बारह भावना)

झूँठे जग के सपने सारे, झूठी मन की सब आशाएँ।
तन-जीवन यौवन अस्थिर है, क्षणभंगुर पल में मुराझायें॥
सम्राट महाबल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या?
अशरण मृतकाया में हर्षित, निज जीवन डाल सकेगा क्या॥
संसार महा दुःखसागर के, प्रभु दुःखमय सुख आभासों में।
मुझको न मिला सुख क्षणभर भी, कंचन-कामिनी प्रासादों में॥
मैं एकाकी एकत्व लिये, एकत्व लिये सब ही आते।
तन-धन को साथी समझा था, पर ये भी छोड़ चले जाते॥

मेरे न हुए ये, मैं इन से, अति भिन्न अखण्ड निराला हूँ।
निज में पर से अन्यत्व लिये, निज सम-रस पीने वाला हूँ॥

जिसके शृंगारों में मेरा, यह महँगा जीवन घुल जाता।
अत्यन्त अशुचि जड़ काया से, इस चेतन का कैसा नाता॥

दिन-रात शुभाशुभ भावों से, मेरा व्यापार चला करता।
मानस, वाणी और काया से, आस्रव का द्वार खुला रहता॥

शुभ और अशुभ की ज्वाला से, झुलसा है मेरा अन्तस्तल।
शीतल समकित किरणों फूटें, संवर से जागे अन्तर्बल॥

फिर तप की शोधक वह्नि जगे, कर्मों की कड़ियाँ टूट पड़ें।
सर्वाङ्ग निजात्मप्रदेशों से, अमृत के निर्झर फूट पड़ें॥

हम छोड़ चले यह लोक तभी, लोकान्त विराजें क्षण में जा।
निजलोक हमारा वासा हो, शोकान्त बने फिर हमको क्या॥

जागे मम दुर्लभ बोधि प्रभो! दुर्नय-तम सत्वर टल जावे।
बस ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊँ, मद-मत्सर-मोह विनश जावे॥

चिर रक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर साथी।
जग में न हमारा कोई था, हम भी न रहें जग के साथी॥

(देव स्तवन)

चरणों में आया हूँ प्रभुवर! शीतलता मुझको मिल जावे।
मुरझाई ज्ञान लता मेरी, निज अन्तर्बल से खिल जावे॥

सोचा करता हूँ भोगों से, बुझ जावेगी इच्छा ज्वाला।
परिणाम निकलता है लेकिन, मानो पावक में घी डाला॥

तेरे चरणों की पूजा से, इन्द्रिय सुख को ही अभिलाषा।
अब तक न समझ ही पाया प्रभु! सच्चे सुख की भी परिभाषा॥

तुम तो अविकारी हो प्रभुवर! जग में रहते जग से न्यारे।
अतएव झुके तब चरणों में, जग के माणिक मोती सारे॥

(शास्त्र स्तवन)

स्याद्वादमयी तेरी वाणी, शुभनय के झरने झरते हैं।
उस पावन नौका पर लाखों, प्राणी भव-वारिधि तिरते हैं॥

(गुरु स्तवन)

हे गुरुवर! शाश्वत सुख-दर्शक, यह नग्न स्वरूप तुम्हारा है।
जग की नश्वरता का सच्चा, दिग्दर्शन करनेवाला है॥

जब जग विषयों में रच-पच कर, गाफिल निद्रा में सोता हो।
अथवा यह शिव के निष्कटंक, पथ में विषकंटक बोता हो॥

हो अर्द्ध-निशा का सन्नाटा, वन में वनचारी चरते हों।
तब शान्त निराकुल मानस तुम, तत्त्वों का चिंतन करते हों॥

करते तप शैल-नदी-तट पर, तरु-तल वर्षा की झड़ियों में।
समतारस-पान किया करते, सुख-दुःख दोनों की घड़ियों में॥

अन्तर्ज्वाला हरती वाणी, मानों झड़ती हों फुलझड़ियाँ।
भव-बन्धन तड़-तड़ टूट पड़ें, खिल जाये अन्तर की कलियाँ॥

तुम सा दानी क्या कोई हो, जग को दे दीं जग की निधियाँ।
दिन-रात लुटाया करते हो, सम-शम की अविनश्वर मणियाँ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हे निर्मल देव! तुम्हें प्रणाम, हे ज्ञान-दीप आगम! प्रणाम।
हे शान्ति-त्याग के मूर्तिमान, शिव-पथ-पन्थी गुरुवर! प्रणाम॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजा

शुद्धब्रह्म परमात्मा, शब्दब्रह्म जिनवाणि।
शुद्धातम साधकदशा, नमौ जोड़ जुगपाणि॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति आह्वाननम्। ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्। ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव, भव, वषट् इति सन्निधिकरणम्।

आशा की प्यास बुझाने को, अब तक मृगतृष्णा में भटका।
जल समझ विषय-विष भोगों को, उनकी ममता में था अटका॥
लख सौम्यदृष्टि तेरी प्रभुवर, समता-रस पीने आया हूँ।
इस जल ने प्यास बुझाई ना, इसको लौटाने लाया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रोधानल से जब जला हृदय, चन्दन ने कोई न काम किया।
तन को तो शान्त किया इसने, मन को न मगर आराम दिया॥
संसार-ताप से तप्त हृदय, सन्ताप मिटाने आया हूँ।
चरणों में चन्दन अर्पण कर, शीतलता पाने आया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अभिमान किया अबतक जड़ पर, अक्षयनिधि को ना पहचाना।
मैं जड़ का हूँ जड़ मेरा है, यह सोच बना था मस्ताना॥
क्षत में विश्वास किया अबतक, अक्षत को प्रभुवर ना जाना।
अभिमान की आन मिटाने को, अक्षयनिधि तुम को पहिचाना॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

दिन-रात वासना में रहकर, मेरे मन ने प्रभु सुख माना।
पुरुषत्व गमाया पर प्रभुवर, उसके छल को न पहिचाना॥
माया ने डाला जाल प्रथम, कामुकता ने फिर बाँध लिया।
उसका प्रमाण यह पुष्प-बाण, लाकर के प्रभुवर भेंट किया॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पर पुद्गल का भक्षण करके, यह भूख मिटानी चाही थी।
इस नागिन से बचने को प्रभु, हर चीज बनाकर खाई थी॥
मिष्टान्न अनेक बनाये थे, दिन-रात भखे न मिटी प्रभुवर।
अब संयम-भाव जगाने को, लाया हूँ ये सब थाली भर॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पहिले अज्ञान मिटाने को, दीपक था जग में उजियाला।
उससे न हुआ कुछ तब युग ने, बिजली का बल्ब जला डाला॥
प्रभु भेद-ज्ञान की आँख न थी, क्या कर सकती थी यह ज्वाला।
यह ज्ञान है कि अज्ञान कहो, तुमको भी दीप दिखा डाला॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ-कर्म कमाऊँ सुख होगा, अबतक मैंने यह माना था।
पाप कर्म को त्याग पुण्य को, चाह रहा अपनाना था॥
किन्तु समझ कर शत्रु कर्म को, आज जलाने आया हूँ।
लेकर दशांग यह धूप, कर्म की धूम उड़ाने आया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

भोगों को अमृतफल जाना, विषयों में निश-दिन मस्त रहा।
उनके संग्रह में हे प्रभुवर! मैं व्यस्त-त्रस्त-अभ्यस्त रहा॥
शुद्धात्मप्रभा जो अनुपम फल, मैं उसे खोजने आया हूँ।
प्रभु सरस सुवासित ये जड़ फल, मैं तुम्हें चढ़ाने लाया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्ष फलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

बहुमूल्य जगत का वैभव यह, क्या हमको सुखी बना सकता।
अरे पूर्णता पाने में, इसकी क्या है आवश्यकता॥
मैं स्वयं पूर्ण हूँ अपने में, प्रभु है अनर्घ्य मेरी माया।
बहुमूल्य द्रव्यमय अर्घ्य लिये, अर्पण के हेतु चला आया॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

समयसार जिनदेव हैं, जिन-प्रवचन जिनवाणी।
नियमसार निर्ग्रन्थ गुरु, करें कर्म की हानि॥

(वीरछन्द)

हे वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, तुमको ना अब तक पहिचाना।
अतएव पड़ रहे हैं प्रभुवर, चौरासी के चक्कर खाना॥
करुणानिधि तुमको समझ नाथ, भगवान भरोसे पड़ा रहा।
भरपूर सुखी कर दोगे तुम, यह सोचे सन्मुख खड़ा रहा॥
तुम वीतराग हो लीन स्वयं में, कभी न मैंने यह जाना।
तुम हो निरीह जग से कृत-कृत, इतना ना मैंने पहिचाना॥
प्रभु वीतराग की वाणी में, जैसा जो तत्त्व दिखाया है।
जो होना है सो निश्चित है, केवलज्ञानी ने गाया है॥
उस पर तो श्रद्धा ला न सका, परिवर्तन का अभिमान किया।
बनकर पर का कर्ता अब तक, सत् का न प्रभो सन्मान किया॥
भगवान तुम्हारी वाणी में, जैसा जो तत्त्व दिखाया है।
स्याद्वाद-नय, अनेकान्त-मय, समयसार समझाया है॥
उस पर तो ध्यान दिया न प्रभो, विकथा में समय गँवाया है।
शुद्धात्म-रुचि न हुई मन में , ना मन को उधर लगाया है॥
मैं समझ न पाया था अबतक, जिनवाणी किसको कहते हैं।
प्रभु वीतराग की वाणी में, कैसे क्या तत्व निकलते हैं॥
राग धर्ममय धर्म रागमय, अब तक ऐसा जाना था।
शुभ-कर्म कमाते सुख होगा, बस अब तक ऐसा माना था॥

पर आज समझ में आया है, कि वीतरागता धर्म अहा।
राग-भाव में धर्म मानना, जिनमत में मिथ्यात्व कहा॥
वीतरागता की पोषक ही, जिनवाणी कहलाती है।
यह है मुक्ति का मार्ग निरन्तर, हमको जो दिखलाती है॥
उस वाणी के अन्तर्तम को, जिन गुरुओं ने पहिचाना है।
उन गुरुवर्यों के चरणों में, मस्तक बस हमें झुकाना है॥
निर्वस्त्र दिगम्बर काया से भी, प्रगट हो रहा अन्तर्मन।
ज्ञानीध्यानी समरससानी, द्वादश विधितपनित करते जो॥
दिन-रात आत्मा का चिन्तन, मृदु सम्भाषण में वही कथन।
निर्ग्रन्थ दिगम्बर सद्ज्ञानी, स्वातम में सदा विचरते जो॥
चलते-फिरते सिद्धों-से-गुरु-चरणों में शीश झुकाते हैं।
हम चलें आपके कदमों पर, नित यही भावना भाते हैं॥
हो नमस्कार शुद्धातम को, हो नमस्कार जिनवर वाणी।
हो नमस्कार उन गुरुओं को, जिनकी चर्या समरससानी॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालामहाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

दर्शन दाता देव हैं, आगम सम्यग्ज्ञान।
गुरु चारित्र की खानि हैं, मैं वंदौं धरि ध्यान॥

(इतिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

श्री वीतराग पूजन

(दोहा)

शुद्धातम में मगन हो, परमातम पद पाय।
भविजन को शुद्धातमा, उपादेय दरशाय॥
जाय बसे शिव लोक में, अहो अहो जिनराज।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, आयो पूजन काज॥

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय ! अत्र मम सिन्नहितो भव भव वषट्।

ज्ञानानुभूति ही परमामृत है, ज्ञानमयी मेरी काया,
है परम पारिणामिक निष्क्रिय, जिसमें कुछ स्वाँग न दिखलाया।
मैं देख स्वयं के वैभव को, प्रभुवर अति ही हर्षाया हूँ,
अपनी स्वाभाविक निर्मलता, अपने अंतर में पाया हूँ।
थिर रह न सका उपयोग प्रभो, बहुमान आपका आया है,
समता मय निर्मल जल ही प्रभु, पूजन के योग्य सुहाया है।

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय! जन्म-जरा-मृत्युरोगविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

है सहज अकर्त्ता ज्ञायक प्रभु, ध्रुव रूप सदा ही रहता है,
सागर की लहरों सम जिसमें, परिणमन सु बाहर होता है।
हे शान्ति सिन्धु! अब बोधमयी, अद्भुत तृप्ति उपजाई है,
अब चाह दाह प्रभु शमित हुई, शीतलता निज में पाई है।
विभु! अशरण जग में शरण मिले, बहुमान आपका आया है,
अमल भाव मय चन्दन ही, पूजन के योग्य सुहाया है।

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय! संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अब भाव हुआ अक्षय पद का, क्षत् का अभिमान पलाया है,
प्रभु निष्कलंक निर्मल ज्ञायक, अविचल अखण्ड दिखलाया है।

जहाँ क्षायिक भाव भी भिन्न दिखे, फिर अन्य भाव की कौन कथा,
अक्षुण्ण आनन्द निज में विलसे, नि:शेष हुई अब सर्वव्यथा।
अक्षय स्वरूप दातार नाथ, बहुमान आपका आया है,
निरपेक्ष भावमय अक्षत ही, पूजन के योग्य सुहाया है।
ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय! अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

परम ब्रह्म की अनुभूतिमय, ब्रह्मचर्य रस प्रगटाया,
भोगों की अब मिटी वासना, दुर्विकल्प भी नहीं आया।
भोगों के तो नाम मात्र से, भी कम्पित मन हो जाता,
मानो आयुध से लगते हैं, तब त्राण स्वयं में ही पाता।
हे काम जयी निज में रम जाऊँ, यही भावना मन आनी,
श्रद्धा सुमन समर्पित जिनवर, काम बुद्धि सब विसरानी।
ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय! कामबाण विध्वंसनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

अतीन्द्रिय निज आतम रस पीकर, तृप्त हुए त्रिभुवन स्वामी,
निज में ही सम्यक् तृप्ति की विधि, तुम से सीखी जगनामी।
अब कर्त्ता भोक्ता बुद्धि छोड़, ज्ञाता रह निज-रस पान करूँ,
इन्द्रिय विषयों की चाह मिटी, सर्वांग सहज आनंदित हूँ।
निज में ही ज्ञानानन्द मिला, बहुमान आपका आया है,
परम तृप्तिमय अकृत बोध ही, पूजन योग्य सुहाया है।
ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय! क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहान्धकार में भटका था, सम्यक् प्रकाश निज में पाया
प्रतिभासित होता हुआ स्वज्ञायक, सहज स्वानुभव में आया।
अतीन्द्रिय सहज, निरालम्बी प्रभु, सम्यग्ज्ञान ज्योति प्रगटी,
चिर की मोह अंधेरी जिनवर, तुम समीप क्षण में विघटी।

अस्थिरता जन्य दोष भगवन, बहुमान आपका आया है,
अविनाशी केवलज्ञान जगे, प्रभु ज्ञान प्रदीप जलाया है।
ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय! मोहान्धकार विनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

निष्क्रिय निष्कर्म परम ज्ञायक, ध्रुव ध्येय स्वरूप अहो पाया,
जब ध्यान अग्नि प्रज्वलित हुई, विघटी पर परिणति की माया।
जागी प्रतीति अब स्वयं सिद्ध, भव भ्रमण भ्राँति सब दूर हुई,
असंयुक्त निर्बन्ध सुनिर्मल, धर्म परिणति प्रकट हुई।
अस्थिरता जन्म विकार मिटे, मैं शरण आपकी हूँ आया,
बहुमान भाव मय धूप स्वाहा, निष्कर्म तत्त्व मैंने पाया।
ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय! अष्टकर्म विनाशनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

है परिपूर्ण सहज ही आतम, कमी नहीं कुछ दिखलावे,
गुण अनन्त सम्पन्न प्रभु, जिसकी दृष्टि में आ आवे।
होय अयाची लक्ष्मीपति, फिर वाँछा ही नहीं उपजावे,
स्वात्मोपलब्धिमय मुक्ति दशा का सत्पुरुषार्थ सु प्रगटावे।
अफल दृष्टि प्रगटी प्रभुवर, बहुमान आपका आया है,
निष्काम भाव मय पूजन का, विभु परम भाव फल पाया है।
ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय! मोक्षफल प्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

निज अविचल अनर्घ पद पाया, सहज प्रमोद हुआ भारी,
ले भावार्घ अर्चना करता, निज अनर्घ वैभव धारी।
चक्री इन्द्रादिक के वैभव भी, नहीं आकर्षित कर सकते,
अखिल विश्व में रम्य भोग भी, मोह नहीं उपजा सकते।
निजानन्द में तृप्तिमय ही, होवे काल अनन्त प्रभो,
ध्रुव अनुपम शिव पदवी प्रगटे, निश्चय ही भगवन्त अहो।
ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय! अनर्घपद प्राप्तये अर्घम् निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

प्रभो आपने एक ज्ञायक बताया।
तिहूँ लोक में नाथ, अनुपम जताया॥ टेक॥
यही रूप मेरा, मुझे आज भाया।
महानन्द मैंने, स्वयं में ही पाया॥
भव-भव भटकते, बहुत काल बीता।
रहा आज तक मोह मदिरा ही पीता॥
फिर ढूँढता सुख विषयों के माँहीं।
मिली किन्तु उनमें असह्य वेदना ही॥
महा भाग्य से आपको, देव पाया।
तिहूँ लोक में नाथ, अनुपम जताया॥
कहाँ तक कहूँ नाथ, महिमा तुम्हारी।
निधि आत्मा की सु, दिखलाई भारी॥
निधि प्राप्ति की प्रभु, सहज विधि बताई।
अनादि की पामरता, बुद्धि पलाई॥
परम भाव मुझको, सहज ही दिखाया।
तिहूँ लोक में नाथ, अनुपम जताया॥
विस्मय से प्रभुवर, था तुमको निरखता।
महामूढ़ दुखिया, स्वयं को समझता॥
स्वंय ही प्रभु हूँ, दिखे आज मुझको।
महाहर्ष मानो, मिला मोक्ष ही हो॥
मैं चिन्मात्र ज्ञायक हूँ, अनुभव में आया।
तिहूँ लोक में नाथ, अनुपम जताया॥

अस्थिरता जन्य प्रभो, दोष भारी।
खटकती है रागादि, परिणति विकारी॥
विश्वास है शीघ्र, ये भी मिटेगी।
स्वभाव के सन्मुख, यह कैसे टिकेगी॥
नित्य निरन्जन का, अवलम्ब पाया।
तिहूँ लोक में नाथ, अनुपम जताया॥
दृष्टि हुई आप सम, ही प्रभो जब।
परिणति भी होगी, तुम्हारे ही सम तब॥
नहीं मुझको चिन्ता, मैं निर्दोष ज्ञायक।
नहीं पर से सम्बध, मैं ही ज्ञेय ज्ञायक॥
हुआ दुर्विकल्पों का, जिनवर सफाया।
तिहूँ लोक में नाथ, अनुपम जताया॥
सर्वांग सुखमय, स्वयं सिद्ध निर्मल।
शक्ति अनन्तों मयी, एक अविचल॥
विन्मूर्ति चिन्मूर्ति, भगवान आत्मा।
तिहूँ जग में नमनीय, शाश्वत् चिदात्मा।।
हो अद्वैत वन्दन, प्रभो हर्ष छाया।
तिहूँ लोक में नाथ, अनुपम जताया॥

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय अनर्घपद प्राप्तये जयमालार्घ्यम् निर्वापामीति स्वाहा।

(दोहा)

आपहि ज्ञायक देव हैं, आप आपका ज्ञेय।
अखिल विश्व में आप ही, ध्येय ज्ञेय श्रद्धेय॥

इत्याशीर्वादः।

श्री समुच्चय पूजन

(दोहा)

देव-शास्त्र-गुरु नमन करि, बीस तीर्थङ्कर ध्याय।
सिद्ध शुद्ध राजत सदा, नमूँ चित्त हुलसाय॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुसमूह! श्रीविद्यमानविंशतितीर्थङ्करसमूह! श्री अनन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठी समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

अनादिकाल से जग में स्वामिन, जल से शुचिता को माना।
शुद्ध निजातम सम्यक् रत्नत्रय, निधि को नहीं पहचाना॥
अब निर्मल रत्नत्रय जल ले, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थङ्कर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः श्री अनन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव आताप मिटावन की, निज में ही क्षमता समता है।
अनजाने में अब तक मैंने, पर में की झूठी ममता है॥
चन्दन-सम शीतलता पाने, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थङ्कर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः श्री अनन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठिभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षय पद बिन फिरा, जगत की लख चौरासी योनी में।
अष्टकर्म के नाश करन को, अक्षत तुम ढिंग लाया मैं॥
अक्षयनिधि निज की पाने अब, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ॥
विद्यमान श्री बीस तीर्थङ्कर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः श्री अनन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठिभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प सुगन्धी से आतम ने, शील स्वभाव नशाया है।
मन्मथ बाणों से बिन्ध करके, चहुँगति दुःख उपजाया है॥
स्थिरता निज में पाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थङ्कर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः श्री अनन्तानन्तसिद्ध-परमेष्ठिभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

षट्रस मिश्रित भोजन से, ये भूख न मेरी शान्त हुई।
आतम रस अनुपम चखने से, इन्द्रिय मन इच्छा शमन हुई॥
सर्वथा भूख के मेटन को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थङ्कर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः श्री अनन्तानन्तसिद्ध-परमेष्ठिभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़दीप विनश्वर को अब तक, समझा था मैंने उजियारा।
निज गुण दरशायक ज्ञानदीप से, मिटा मोह का अँधियारा॥
ये दीप समर्पण करके मैं, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थङ्कर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः श्री अनन्तानन्तसिद्ध-परमेष्ठिभ्यः मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ये धूप अनल में खेने से, कर्मों को नहीं जलायेगी।
निज में निज की शक्ति ज्वाला, जो राग-द्वेष नशायेगी॥
उस शक्तिदहन प्रकटाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थङ्कर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः श्री अनन्तानन्तसिद्ध-परमेष्ठिभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पिस्ता बादाम श्रीफल लवंग, चरणन तुम ढिंग मैं ले आया।
आतम रस भीने निजगुण फल, मम मन अब उनमें ललचाया॥
अब मोक्ष महाफल पाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थङ्कर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः श्री अनन्तानन्तसिद्ध-परमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टम वसुधा पाने को, कर में ये आठों द्रव्य लिये।
सहज शुद्ध स्वाभाविकता से, निज में निज गुण प्रकट किये॥
ये अर्घ्य समर्पण करके मैं, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थङ्कर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः श्री अनन्तानन्तसिद्ध-परमेष्ठिभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

देव-शास्त्र-गुरु बीस तीर्थङ्कर, सिद्ध प्रभु भगवान।
अब वरणूँ जयमालिका, करूँ स्तवन गुणगान॥

(भुजङ्गप्रयात)

नसे घातिया कर्म अर्हन्त देवा,
करें सुर-असुर नर-मुनि नित्य सेवा।
दरशज्ञान सुखबल अनन्त के स्वामी,
छियालीस गुणयुत महाईश नामी॥
तेरी दिव्यवाणी सदा भव्य मानी,
महामोह विध्वंसिनी मोक्षदानी।

अनेकान्तमय द्वादशाङ्गी बखानी,
नमो लोक माता श्री जैनवाणी॥
विरागी अचारज उवज्झाय साधू,
दरश-ज्ञान भण्डार समता अराधू।
नगन वेशधारी सु एका विहारी,
निजानन्द मण्डित मुकति पथ प्रचारी॥
विदेह क्षेत्र में तीर्थङ्कर बीस राजे,
विहरमान वन्दूँ सभी पाप भाजे।
नमूँ सिद्ध निर्भय निरामय सुधामी,
अनाकुल समाधान सहजाभिरामी॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्योऽनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यो-ऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीरछन्द)

देव-शास्त्र-गुरु बीस तीर्थङ्कर, सिद्ध हृदय बिच धर ले रे।
पूजन ध्यान गान गुण करके, भवसागर जिय तर ले रे॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

अहो! देव-गुरु-धर्म तो सर्वोत्कृष्ट पदार्थ हैं, इनके आधार से प्रेम है इनमें शिथिलता रखने से अन्य धर्म किस प्रकार होगा? इसलिए बहुत कहने से क्या? सर्वथा प्रकार से कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का त्यागी होना योग्य है।

- मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृष्ठ 192

श्रीपञ्चपरमेष्ठी पूजन

(छन्द - तांटक)

अरहन्त सिद्ध आचार्य नमन, हे उपाध्याय हे साधु नमन।
जय पञ्च परम परमेष्ठी जय, भवसागर तारणहार नमन॥

मन-वच-काया पूर्वक करता हूँ, शुद्ध हृदय से आह्वानन।
मम हृदय विराजो तिष्ठ तिष्ठ, सन्निकट होहु मेरे भगवन॥

निज आत्मतत्व की प्राप्ति हेतु, ले अष्ट द्रव्य करता पूजन।
तुम चरणों की पूजन से प्रभु, निज सिद्ध रूप का हो दर्शन॥

ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपञ्चपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् इति आह्वानम्।

ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपञ्चपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठः ठः इति स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपञ्चपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

मैं तो अनादि से रोगी हूँ, उपचार कराने आया हूँ।
तुम सम उज्ज्वलता पाने को, उज्ज्वल जल भरकर लाया हूँ॥
मैं जन्म-जरा-मृतु नाश करूँ, ऐसी दो शक्ति हृदय स्वामी।
हे पञ्च परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं श्री पञ्चपरमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

संसार ताप में जल-जलकर, मैंने अगणित दुःख पाये हैं।
निज शान्त स्वभाव नहीं भाया, पर के ही गीत सुहाए हैं॥
शीतल चन्दन हैं भेंट तुम्हें, संसार-ताप नाशो स्वामी।
हे पञ्च परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं श्री पञ्चपरमेष्ठिभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

दु:खमय अथाह भवसागर में, मेरी यह नौका भटक रही।
शुभ-अशुभ भाव की भँवरों में चैतन्य शक्ति निज अटक रही॥
तन्दुल है धवल तुम्हें अर्पित, अक्षयपद प्राप्त करूँ स्वामी।
हे पञ्च परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दु:ख मेटो अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं श्री पञ्चपरमेष्ठिभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं काम-व्यथा से घायल हूँ, सुख की न मिली किंचित् छाया।
चरणों में पुष्प चढ़ाता हूँ, तुम को पाकर मन हर्षाया॥
मैं काम-भाव विध्वंस करूँ, ऐसा दो शील हृदय स्वामी।
हे पञ्च परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दु:ख मेटो अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं श्री पञ्चपरमेष्ठिभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं क्षुधा-रोग से व्याकुल हूँ, चारों गति में भरमाया हूँ।
जग के सारे पदार्थ पाकर भी, तृप्त नहीं हो पाया हूँ॥
नैवेद्य समर्पित करता हूँ, यह क्षुधा-रोग मेटो स्वामी।
हे पञ्च परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दु:ख मेटो अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं श्री पञ्चपरमेष्ठिभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहान्ध महा-अज्ञानी मैं, निज को पर का कर्ता माना।
मिथ्यातम के कारण मैंने, निज आत्मस्वरूप न पहिचाना॥
मैं दीप समर्पण करता हूँ, मोहान्धकार क्षय हो स्वामी।
हे पञ्च परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दु:ख मेटो अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं श्री पञ्चपरमेष्ठिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मों की ज्वाला धधक रही, संसार बढ़ रहा है प्रतिपल।
संवर से आस्रव को रोकूँ, निर्जरा सुरभि महके पल-पल॥

मैं धूप चढ़ाकर अब आठों, कर्मों का हनन करूँ स्वामी।
हे पञ्च परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दु:ख मेटो अन्तर्यामी॥
ॐ ह्रीं श्री पञ्चपरमेष्ठिभ्योऽष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निज आत्मतत्व का मनन करूँ, चिन्तवन करूँ निज चेतन का ।
दो श्रद्धा-ज्ञान-चरित्र श्रेष्ठ, सच्चा पथ मोक्ष निकेतन का॥
उत्तम फल चरण चढ़ाता हूँ, निर्वाण महाफल हो स्वामी।
हे पञ्च परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दु:ख मेटो अन्तर्यामी॥
ॐ ह्रीं श्री पञ्चपरमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चन्दन अक्षत पुष्प दीप, नैवेद्य धूप फल लाया हूँ।
अब तक के संचित कर्मों का, मैं पुञ्ज जलाने आया हूँ॥
यह अर्घ्य समर्पित करता हूँ, अविचल अनर्घ्यपद दो स्वामी।
हे पञ्च परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दु:ख मेटो अन्तर्यामी॥
ॐ ह्रीं श्री पञ्चपरमेष्ठिभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

जय वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, निजध्यान लीन गुणमय अपार।
अष्टादश दोषरहित जिनवर, अरहन्तदेव को नमस्कार॥ 1॥

अविकल अविकारी अविनाशी, निजरूप निरञ्जन निराकार।
जय अजर-अमर हे मुक्तिकन्त, भगवन्त सिद्ध को नमस्कार॥ 2॥

छत्तीस सुगुण से तुम मण्डित, निश्चय रत्नत्रय हृदय धार।
हे मुक्त्विधू के अनुरागी, आचार्य सुगुरु को नमस्कार॥ 3॥

एकादश अङ्ग पूर्व चौदह के, पाठी गुण पच्चीस धार।
बाह्यान्तर मुनि मुद्रा महान, श्री उपाध्याय को नमस्कार॥ 4॥

व्रत समिति गुप्ति चारित्र धर्म, वैराग्य भावना हृदय धार।
हे द्रव्य-भाव संयममय मुनिवर, सर्वसाधु को नमस्कार ॥ 5 ॥

बहु पुण्यसंयोग मिला नरतन, जिनश्रुत जिनदेव चरण दर्शन।
हो सम्यग्दर्शन प्राप्त मुझे, तो सफल बने मानव जीवन ॥ 6 ॥

निज-पर का भेद जानकर मैं, निज को ही निज में लीन करूँ।
अब भेदज्ञान के द्वारा मैं, निज आत्म स्वयं स्वाधीन करूँ ॥ 7 ॥

निज में रत्नत्रय धारणकर, निज परिणति को ही पहचानूँ।
पर-परिणति से हो विमुख सदा, निज ज्ञानतत्त्व को ही जानूँ ॥ 8 ॥

जब ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता विकल्प तज, शुक्लध्यान में ध्याऊँगा।
तब चार घातिया क्षय करके, अरहन्त महापद पाऊँगा ॥ 9 ॥

है निश्चित सिद्ध स्वपद मेरा, हे प्रभु! कब इसको पाऊँगा।
सम्यक् पूजा फल पाने को, अब निजस्वभाव में आऊँगा ॥ 10 ॥

अपने स्वरूप की प्राप्ति हेतु, हे प्रभु! मैंने की है पूजन।
तब तक चरणों में ध्यान रहे, जब तक न प्राप्त हो मुक्ति सदन ॥ 11 ॥

ॐ ह्रीं श्री अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपञ्चपरमेष्ठिभ्यो-ऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हे मङ्गल रूप अमङ्गल हर, मङ्गलमय मङ्गल गान करूँ।
मङ्गल में प्रथम श्रेष्ठ मङ्गल, नवकार मन्त्र का ध्यान करूँ ॥ 12 ॥

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।)

श्रीसिद्ध पूजन

(हरिगीतिका)

निज वज्र पौरुष से प्रभो! अन्तर-कलुष सब हर लिये,
प्रांजल प्रदेश-प्रदेश में, पीयूष निर्झर झर गये।
सर्वोच्च हो अत एव बसते लोक के उस शिखर रे!
तुम को हृदय में स्थाप, मणि-मुक्ता चरण को चूमते॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते! सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर, अवतर, संवौषट इति आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपते! सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते! सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो, भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(वीरछन्द)

शुद्धातम-सा परिशुद्ध प्रभो! यह निर्मल नीर चरण लाया।
मैं पीड़ित निर्मम ममता से, अब इसका अन्तिम दिन आया॥
तुम तो प्रभु अन्तर्लीन हुए, तोड़े कृत्रिम सम्बन्ध सभी।
मेरे जीवन-धन तुमको पा, मेरी पहली अनुभूति जगी॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मेरे चैतन्य-सदन में प्रभु! धूँ-धूँ क्रोधानल जलता है।
अज्ञान-अमा के अंचल में, जो छिपकर पल-पल पलता है॥
प्रभु! जहाँ क्रोध का स्पर्श नहीं, तुम बसो मलय की महकों में।
मैं इसीलिए मलयज लाया, क्रोधासुर भागे पलकों में॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अधिपति प्रभु! धवल भवन के हो, और धवल तुम्हारा अन्तस्तल।
अन्तर के क्षत सब विक्षत कर, उभरा स्वर्णिम सौन्दर्य विमल॥

मैं महामान से क्षत-विक्षत, हूँ खण्ड-खण्ड लोकान्त-विभो।
मेरे मिट्टी के जीवन में, प्रभु! अक्षत की गरिमा भर दो॥
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

चैतन्य-सुरभि की पुष्पवाटिका, में विहार नित करते हो।
माया की छाया रंच नहीं, हर बिन्दु सुधा की पीते हो॥
निष्काम प्रवाहित हर हिलोर, क्या काम काम की ज्वाला से।
प्रत्येक प्रदेश प्रमत्त हुआ, पाताल-मधु मधुशाला से॥
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

यह क्षुधा देह का धर्म प्रभो! इसकी पहिचान कभी न हुई।
हर पल तन में ही तन्मयता, क्षुत-तृष्णा अविरल पीन हुई॥
आक्रमण क्षुधा का सह्य नहीं, अतएव लिये हैं व्यञ्जन ये।
सत्वर तृष्णा को तोड़ प्रभो! लो! हम आनन्द-भवन पहुँचे॥
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विज्ञान-नगर के वैज्ञानिक, तेरी प्रयोगशाला विस्मय।
कैवल्य-कला में उमड़ पड़ा, सम्पूर्ण विश्व का ही वैभव॥
पर तुम तो उससे अति विरक्त, नित निरखा करते निज निधियाँ।
अतएव प्रतीक प्रदीप लिये, मैं मना रहा दीपावलियाँ॥
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

तेरा प्रासाद महकता प्रभु! अति दिव्य दशांगी धूपों से।
अतएव निकट नहिं आ पाते, कर्मों के कीट-पतंग अरे॥

यह धूप सुरभि-निर्झरणी, मेरा पर्यावरण विशुद्ध हुआ।
छक गया योग-निद्रा में प्रभु! सर्वांग अमी है बरस रहा॥
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निजलीन परम स्वाधीन बसो, प्रभु! तुम सुरम्य शिव-नगरी में।
प्रति पल बरसात गगन से हो, रसपान करो शिव-गगरी में॥
ये सुरतरुओं के फल साक्षी, यह भव-संतति का अन्तिम क्षण।
प्रभु! मेरे मण्डप में आओ, है आज मुक्ति का उद्घाटन॥
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

तेरे विकर्ण गुण सारे प्रभु ! मुक्ता-मोदक से सघन हुए।
अतएव रसास्वादन करते, रे ! घनीभूत अनुभूति लिये॥
हे नाथ! मुझे भी अब प्रतिक्षण, निज अन्तर-वैभव की मस्ती।
है आज अर्घ्य की सार्थकता, तेरी अस्ति मेरी बस्ती॥
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

चिन्मय हो, चिद्रूप प्रभु! ज्ञाता मात्र चिदेश।
शोध-प्रबन्ध चिदात्म के, सृष्टा तुम ही एक॥

(रेखता)

जगाया तुमने कितनी बार! हुआ नहिं चिर-निद्रा का अन्त।
मदिर सम्मोहन ममता का, अरे! बेचेत पड़ा मैं सन्त॥
घोर तम छाया चारों ओर, नहीं निज सत्ता की पहिचान।
निखिल जड़ता दिखती सप्राण, चेतना अपने से अनजान॥

ज्ञान की प्रतिपल उठे तरङ्ग, झाँकता उसमें आतमराम।
अरे!आबाल सभी गोपाल, सुलभ सबको चिन्मय अभिराम॥

किन्तु पर सत्ता में प्रतिबद्ध, कीर-मर्कट-सी गहल अनन्त।
अरे! पाकर खोया भगवान, न देखा मैंने कभी बसन्त॥

नहीं देखा निज शाश्वत देव, रही क्षणिका पर्यय की प्रीति।
क्षम्य कैसे हों ये अपराध? प्रकृति की यही सनातन रीति॥

अत: जड़ कर्मों की जञ्जीर, पड़ी मेरे सर्वात्म प्रदेश।
और फिर नरक निगोदों बीच, हुए सब निर्णय हे सर्वेश!

घटा घन विपदा की बरसी, कि टूटी शंपा मेरे शीश।
नरक में पारद-सा तन टूक, निगोदों मध्य अनन्ती मीच॥

करें क्या स्वर्ग सुखों की बात, वहाँ की कैसी अद्भुत टेव!
अन्त में बिलखे छह-छह मास, कहें हम कैसे उसको देव!

दशा चारों गति की दयनीय, दया का किन्तु न यहाँ विधान।
शरण जो अपराधी को दे अरे! अपराधी वह भगवान॥

अरे! मिट्टी की काया बीच, महकता चिन्मय भिन्न अतीव।
शुभाशुभ की जड़ता तो दूर, पराया ज्ञान वहाँ परकीय॥

अहो 'चित्' परम अकर्त्तानाथ, अरे! वह निष्क्रिय तत्त्व विशेष।
अपरिमित अक्षय वैभव-कोष, सभी ज्ञानी का यह परिवेश॥

बताये मर्म अरे! यह कौन, तुम्हारे बिन वैदेही नाथ?
विधाता शिव-पथ के तुम एक, पड़ा मैं तस्कर दल के हाथ॥

किया तुमने जीवन का शिल्प, खिरे सब मोहकर्म और गात।
तुम्हारा पौरुष झंझावात, झड़ गये पीले-पीले पात॥

नहीं प्रज्ञा-अवार्त्तन शेष, हुए सब आवागमन अशेष।
अरे प्रभु! चिर-समाधि में लीन, एक में बसते आप अनेक॥

तुम्हारा चित्-प्रकाश कैवल्य, कहें तुम ज्ञायक लोकालोक।
अहो! बस ज्ञान जहाँ हो लीन, वही है ज्ञेय, वही है भोग॥

योग-चांचल्य हुआ अवरुद्ध, सकल चैतन्य निकल निष्कम्प।
अरे! ओ योगरहित योगीश! रहो यों काल अनन्तानन्त॥

जीव कारण-परमात्म त्रिकाल, वही है अन्तस्तत्त्व अखण्ड।
तुम्हें प्रभु! रहा वही अवलम्ब, कार्य परमात्म हुए निर्बन्ध॥

अहो! निखरा काञ्चन चैतन्य, खिले सब आठों कमल पुनीत।
अतीन्द्रिय सौख्य चिरंतन भोग, करो तुम धवलमहल के बीच॥

उछलता मेरा पौरुष आज, त्वरित टूटेंगे बन्धन नाथ।
अरे! तेरी सुख-सय्या बीच, होगा मेरा प्रथम प्रभात॥

प्रभो! बीती विभावरी आज, हुआ अरुणोदय शीतल छाँव।
झूमते शान्ति-लता के कुंज, चलें प्रभु! अब अपने उस गाँव॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

चिर-विलास चिद्ब्रह्म में, चिर-निमग्न भगवन्त।
द्रव्य-भाव स्तुति से प्रभो!, वन्दन तुम्हें अनन्त॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

श्रीसिद्ध पूजन

(दोहा)

चिदानन्द स्वातमरसी, सत् शिव सुन्दर जान।
ज्ञाता-दृष्टा लोक के, परम सिद्ध भगवान॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर, अवतर, संवौषट् इति आह्वाननम्। ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठः ठः इति स्थापनम्। ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो, भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

ज्यों-ज्यों प्रभुवर जल पान किया, त्यों-त्यों तृष्णा की आग जली।
थी आश कि प्यास बुझेगी अब, पर यह सब मृगतृष्णा निकली॥
आशा-तृष्णा से जला हृदय; जल लेकर चरणों में आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

तन का उपचार किया अबतक, उस पर चंदन का लेप किया।
मल-मल कर खूब नहा करके, तन के मल का विक्षेप किया॥
अब आतम के उपचार हेतु, तुमको चन्दन-सम है पाया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

सचमुच तुम अक्षत हो प्रभुवर, तुम ही अखण्ड अविनाशी हो।
तुम निराकार अविचल निर्मल, स्वाधीन सफल सन्यासी हो॥
ले शालिकणों का अवलम्बन, अक्षयपद! तुमको अपनाया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

जो शत्रु जगत का प्रबल काम, तुमने प्रभुवर उसको जीता।
हो हार जगत के वैरी की, क्यों नहिं आनन्द बढ़े सब का॥
प्रमुदित मन विकसित सुमन नाथ, मनसिज को ठुकराने आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं समझ रहा था अब तक प्रभु, भोजन से जीवन चलता है।
भोजन बिन नरकों में जीवन, भरपेट मनुज क्यों मरता है॥
तुम भोजन बिन अक्षय सुखमय, यह समझ त्यागने हूँ आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आलोक ज्ञान का कारण है, इन्द्रिय से ज्ञान उपजता है।
यह मान रहा था पर क्यों कर, जड़-चेतन-सर्जन करता है॥
मेरा स्वभाव है ज्ञानमयी, यह भेद-ज्ञान पा हरषाया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

मेरा स्वभाव चेतनमय है, इसमें जड़ की कुछ गंध नहीं।
मैं हूँ अखण्ड चिद्पिण्ड चण्ड, पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं॥
यह धूप नहीं, जड़-कर्मों की रज आज उड़ाने मैं आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ-कर्मों का फल विषय-भोग, भोगों में मानस रमा रहा।
नित नई लालसायें जागीं, तन्मय हो उनमें समा रहा॥

रागादि विभाव किये जितने, आकुलता उनका फल पाया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया॥
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल पिया और चन्दन चरचा, मालायें सुरभित सुमनों की।
पहनीं, तन्दुल सेये व्यंजन, दीपावलियाँ की रत्नों की॥
सुरभी धूपायन की फैली, शुभ-कर्मों का सब फल पाया।
आकुलता फिर भी बनी रही, क्या कारण जान नहीं पाया॥
जब दृष्टि पड़ी प्रभुजी तुम पर, मुझको स्वभाव का भान हुआ।
सुख नहीं विषय-भोगों में है, तुम को लख यह सद्ज्ञान हुआ॥
जल से फल तक का वैभव यह, मैं आज त्यागने हूँ आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया॥
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

आलोकित हो लोक में, प्रभु परमात्म प्रकाश।
आनन्दामृत पानकर, मिटे सभी की प्यास॥

(पद्धरि)

जय ज्ञान मात्र ज्ञायक स्वरूप, तुम हो अनन्त चैतन्य रूप।
तुम हो अखण्ड आनन्द पिण्ड, मोहारि दलन को तुम प्रचण्ड॥
रागादि विकारी भाव जार, तुम हुए निरामय निर्विकार।
निर्द्वन्द निराकुल निराधार, निर्मम निर्मल हो निराकार॥
नित करत रहत आनन्द रास, स्वाभाविक परिणति में विलास।
प्रभु शिव-रमणी के हृदय हार, नित करत रहत निज में विहार॥

प्रभु भवदधि यह गहरो अपार, बहते जाते सब निराधार।
निज परिणति का सत्यार्थभान, शिवपद दाता जो तत्वज्ञान॥

पाया नहिं मैं उसको पिछान, उलटा ही मैंने लिया मान।
चेतन को जड़मय लिया जान, तन में अपनापा लिया मान॥

शुभ-अशुभ राग जो दुःखखान, उसमें माना आनन्द महान।
प्रभु अशुभ-कर्म को मान हेय, माना पर शुभ को उपादेय॥

जो धर्म-ध्यान आनन्द रूप, उसको जाना मैं दुःख स्वरूप।
मनवांछित चाहे नित्य भोग, उनको ही माना है मनोग॥

इच्छा-निरोध की नहीं चाह, कैसे मिटता भव-विषय-दाह।
आकुलतामय संसार-सुख, जो निश्चय से है महा-दुःख॥

उसकी ही निश-दिन करी आश, कैसे कटता संसार-पाश।
भव-दुःख का पर को हेतु जान, पर से ही सुख को लिया मान॥

मैं दान दिया अभिमान ठान, उसके फल पर नहिं दिया ध्यान।
पूजा कीनी वरदान माँग, कैसे मिटता संसार स्वाँग॥

तेरा स्वरूप लख प्रभु आज, हो गये सफल सम्पूर्ण काज।
मो उर प्रकट्यो प्रभु भेद-ज्ञान, मैंने तुम को लीना पिछान॥

तुम पर के कर्ता नहीं नाथ, ज्ञाता हो सब के एक साथ।
तुम भक्तों को कुछ नहीं देत, अपने समान बस बना लेत॥

यह मैंने तेरी सुनी आन, जो लेवे तुम को बस पिछान।
वह पाता है केवल्यज्ञान, होता परिपूर्ण कला-निधान॥

विपदामय परपद है निकाम, निजपद ही है आनन्द-धाम।
मेरे मन में बस यही चाह, निजपद को पाऊँ हे जिनाह॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

पर का कुछ नहिं चाहता, चाहूँ अपना भाव।
निज-स्वभाव में थिर रहूँ मेटो सकल विभाव॥

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अशरीरी सिद्ध भगवान

(तर्ज) - (करुणा सागर भगवान, भव पार लगा देना)

अशरीरी-सिद्ध भगवान, आदर्श तुम्हीं मेरे।
अविरुद्ध शुद्ध चिद्घन, उत्कर्ष तुम्हीं मेरे॥टेक॥

सम्यक्त्व सुदर्शन ज्ञान, अगुरुलघु अवगाहन।
सूक्ष्मत्व वीर्य गुणखान, निर्बाधित सुखवेदन॥
हे गुण अनन्त के धाम, वन्दन अगणित मेरे॥1॥

रागादि रहित निर्मल, जन्मादि रहित अविकल।
कुल गोत्र रहित निष्कुल, मायादि रहित निश्छल॥
रहते निज में निश्चल, निष्कर्म साध्य मेरे॥2॥

रागादि रहित उपयोग, ज्ञायक प्रतिभासी हो।
स्वाश्रित शाश्वत-सुख भोग, शुद्धात्म-विलासी हो॥
हे स्वयं सिद्ध भगवान, तुम साध्य बनो मेरे॥3॥

भविजन तुम-समनिज-रूप, ध्याकर तुम-सम होते।
चैतन्य पिण्ड शिव-भूप, होकर सब दुख खोते॥
चैतन्यराज सुखखान, दुख दूर करो मेरे॥4॥

श्रीनवदेव पूजन

(तातंक)

श्री अरहंत सिद्ध आचार्योपाध्याय, मुनि साधु महान।
जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्मदेव नव जान॥
ये नवदेव परम हितकारी रत्नत्रय के दाता हैं।
विघ्न विनाशक संकटहर्ता तीन लोक विख्याता हैं॥
जल फलादि वसु द्रव्य सजाकर हे प्रभु नित्य करूँ पूजन।
मंगलोत्तम शरण प्राप्त कर मैं पाऊँ सम्यक्दर्शन॥
आत्मतत्व का अवलम्बन ले पूर्ण अतीन्द्रिय सुख पाऊँ।
नवदेवों की पूजन करके फिर न लौट भव में आऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेव अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेव अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेव अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

परम भाव जल की धारा से जन्म मरण का नाश करूँ।
मिथ्यातम का गर्व चूर कर रवि सम्यक्त्व प्रकाश करूँ॥
पंच परम परमेष्ठी, जिनश्रुत, जिनगृह, जिनप्रतिमा जिनधर्म।
नवदेवों की पूजन करके मैं बन जाऊँ प्रभु निष्कर्म॥

ॐ ह्रीं श्री अरहंतसिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

परम भाव चंदन के बल से भव आतप का नाश करूँ।
अन्धकार अज्ञान मिटाऊँ सम्यकज्ञान प्रकाश करूँ॥ पंच.॥

ॐ ह्रीं श्री अरहंतसिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

परम भाव अक्षत के द्वारा अक्षय पद को प्राप्त करूँ।
मोह-क्षोभ से रहित बनूँ मैं सम्यक्चारित प्राप्त करूँ॥ पंच. ॥
ॐ ह्रीं श्री अरहंतसिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

परम भाव पुष्पों से दुर्धर काम-भाव को नाश करूँ।
तप-संयम की महाशक्ति से निर्मल आत्म प्रकाश करूँ॥ पंच. ॥
ॐ ह्रीं श्री अरहंतसिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

परम भाव नैवेद्य प्राप्तकर क्षुधा व्याधि का ह्रास करूँ।
पंचाचार आचरण करके परम तृप्त शिववास करूँ॥ पंच. ॥
ॐ ह्रीं श्री अरहंतसिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परम भाव मय दिव्य ज्योति से पूर्ण मोह का नाश करूँ।
पाप-पुण्य आस्त्रव विनाशकर केवलज्ञान प्रकाश करूँ॥ पंच. ॥
ॐ ह्रीं श्री अरहंतसिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

परम भाव संपत्ति प्राप्त कर मोक्ष भवन में वास करूँ।
रत्नत्रय की मुक्ति शिला पर सादि अनंत निवास करूँ॥ पंच. ॥
ॐ ह्रीं श्री अरहंतसिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो महामोक्षफल प्राप्ताय फल निर्वपामीति स्वाहा।

परम भाव के अर्घ्य चढ़ाऊँ उर अनर्घ पद व्याप्त करूँ।
भेदज्ञान रवि हृदय जगाकर शाश्वत जीवन प्राप्त करूँ॥ पंच. ॥
ॐ ह्रीं श्री अरहंतसिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो अनर्घपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

नवदेवों को नमन कर करूँ आत्म कल्याण।
शाश्वत सुख की प्राप्ति हित करूँ भेद विज्ञान॥

जय जय पंच परम परमेष्ठी जिनवाणी जिन धर्म महान।
जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, नवदेवों को नित वन्दू धर ध्यान॥
श्री अरहंत देव मंगलमय मोक्ष मार्ग के नेता हैं।
सकल ज्ञेय के ज्ञाता दृष्टा कर्म शिखर के भेत्ता हैं॥
हैं लोकाग्र शिखर पर सुस्थित सिद्धशिला पर सिद्धअनंत।
अष्टकर्म रज से विहीन प्रभु सकल सिद्धदाता भगवंत॥
हैं छत्तीस गुणों से शोभित श्री आचार्य देव भगवान।
चार संघ के नायक ऋषिवर करते सबको शान्ति प्रदान॥
ग्यारह अंग पूर्व चौदह के ज्ञाता उपाध्याय गुणवन्त।
जिन आगम का पठन और पाठन करते हैं महिमावन्त॥
अट्ठाईस मूलगूण पालक ऋषिमुनि साधु परम गुणवान।
मोक्षमार्ग के पथिक श्रमण करते जीवों को करुणादान॥
स्याद्वादमय द्वादशांग जिनवाणी है जग कल्याणी।
जो भी शरण प्राप्त करता है हो जाता केवलज्ञानी॥
जिनमंदिर जिन समवसरणसम इसकी महिमा अपरम्पार।
गंध कुटी में नाथ विराजे हैं अरहंत देव साकार॥
जिन प्रतिमा अरहंतों की नासाग्र दृष्टि निज ध्यानमयी।
जिन दर्शन से निज दर्शन हो जाता तत्क्षण ज्ञानमयी॥
श्री जिनधर्म महा मंगलमय जीव मात्र को सुख दाता।
इसकी छाया में जो आता हो जाता दृष्टा ज्ञाता॥
ये नवदेव परम उपकारी वीतरागता के सागर।

सम्यक्दर्शन ज्ञान चरित से भर देते सबकी गागर॥
मुझको भी रत्नत्रयनिधि दो मैं कर्मों का भार हरूँ।
क्षीणमोह जितराग जितेन्द्रिय हो भव सागर पार करूँ॥
सदा-सदा नवदेव शरण पा मैं अपना कल्याण करूँ।
जब तक सिद्ध स्वपद ना पाऊँ हे प्रभु पूजन ध्यान करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री अरहंतसिद्ध-आचार्योपाध्याय-सर्वसाधु, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, जिनधर्म नवदेवेभ्यो अनर्घपद प्राप्ताय पर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मंगलोत्तम शरण हैं नव देवता महान।
भाव पूर्ण जिन भक्ति से होता दुख अवसान॥

इत्याशीर्वादः।

पूजन एक ऐसा मधुर एवं सहज धार्मिक कर्म है जिसमें सम्पूर्ण तत्त्वज्ञान भक्ति के संगीत में घुलकर बड़ा मधुर आस्वाद देता है। जहाँ तत्वज्ञान में मस्तिष्क की प्रधानता होती है वहीं पूजा में हृदय मुख्य होता है, इसलिए भक्ति का यह अंग यद्यपि तत्वज्ञान के बिना कार्यकारी नहीं होता फिर भी तत्वज्ञान का चिंतन भक्ति की कोमल भावधारा का उल्लंघन करके उदित नहीं होता।

-बाबू युगलजी
चैतन्य विहार 65-66

श्रीविद्यमान बीस तीर्थङ्कर पूजन

(दोहा)

दीप अढ़ाई मेरु पन, सब तीर्थङ्कर बीस।
तिन सबकी पूजा करूँ, मन-वच-तन धरि शीश॥

ॐ ह्रीं श्री विदेहक्षेत्रस्थविद्यमानविंशतितीर्थङ्कराः! अत्र अवतर, अवतर, संवौषट् इति आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री विदेहक्षेत्रस्थविद्यमानविंशतितीर्थङ्कराः! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री विदेहक्षेत्रस्थविद्यमानविंशतितीर्थङ्कराः! अत्र मम सन्निहितो, भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

इन्द्र फणीन्द्र नरेन्द्र वन्द्य पद निर्मल धारी।
शोभनीक संसार सार है गुण अविकारी॥
क्षीरोदधि सम नीर सों (हो) पूजों तृषा निवार।
सीमन्धर जिन आदि दे (स्वामी), बीस विदेह मँझार॥
श्री जिनराज हो भव तारण-तरण जिहाज॥

ॐ ह्रीं श्री विदेहक्षेत्रसम्बन्धिविद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

तीन लोक के जीव, पाप-आताप सताये।
तिनको साता दाता, शीतल वचन सुहाये॥
बावन चन्दन सों जजूँ (हो) भ्रमन तपन निरवार॥ सीम. ॥

ॐ ह्रीं श्री विदेहक्षेत्रसम्बम्धिविद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

यह संसार अपार, महासागर जिनस्वामी।
तातैं तारे बड़ी भक्ति-नौका जगनामी॥
तन्दुल अमल सुगन्धसों (हो), पूजूँ तुम गुणसार॥ सीम. ॥

ॐ ह्रीं श्री विदेहक्षेत्रसम्बम्धिविद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

भविक सरोज विकास निन्द्य तमहर-रवि से हो।
जति श्रावक आचार कथन को तुमहीं बड़े हो॥
फूल सुवास अनेकसो (हों) पूजों मदनप्रहार॥ सीम. ॥

ॐ ह्रीं श्री विदेहक्षेत्रसम्बन्धिविद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

कामनाग विषधाम नाश को गरुड़ कहे हो।
क्षुधा महा दव-ज्वाल, तासु को मेघ लहे हो॥
नेवज बहुघृत मिष्टसों (हो) पूजों भूख विडार॥ सीम. ॥

ॐ ह्रीं श्री विदेहक्षेत्रसम्बन्धिविद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उद्यम होन न देत, सर्व जगमाहिं भर्‌यो है।
मोहमहातम घोर नाश, परकाश कर्‌यो है॥
पूजों दीप प्रकाश सों (हो), ज्ञानज्योति करतार॥ सीम. ॥

ॐ ह्रीं श्री विदेहक्षेत्रसम्बन्धिविद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म आठ सब काठ-भार विस्तार निहारा।
ध्यान-अग्नि कर प्रकट सर्व कीनों निरवारा॥
धूप अनूपम खेवतें (हो) दुःख जलै निरधार॥ सीम. ॥

ॐ ह्रीं श्री विदेहक्षेत्रसम्बन्धिविद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

मिथ्यावादी दुष्ट लोभऽहंकार भरे हैं।
सबको छिन में, जीत जैन के मेरु खड़े हैं॥
फल अति उत्तम सों जजौं (हो) वांछितफल दातार॥ सीम. ॥

ॐ ह्रीं श्री विदेहक्षेत्रसम्बन्धिविद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्य मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फल आठों दरब, अरघ कर प्रीत धरी है।
गणधर इन्द्रनि हूँ तैं थुति पूरी न करी है॥
द्यानत सेवक जानके (हो) जगतैं लेहु निकार॥ सीम. ॥

ॐ ह्रीं श्री विदेहक्षेत्रसम्बन्धिविद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(सोरठा)

ज्ञान सुधाकर चन्द्र, भविक खेत हित मेघ हो।
भ्रमतम भान आमन्द, तीर्थङ्कर बीसों नमौं॥ 1॥

सीमन्धर सीमन्धर स्वामी, जुगमन्धर जुगमन्धर नामी।
बाहु बाहुजिन जगजन तारे, करम सुबाहु बाहुबल दारे॥ 2॥

(चौपाई)

जात सुजातं केवलज्ञानं, स्वयंप्रभु प्रभु स्वयं प्रधानं।
ऋषभानन ऋषि भानन दोषं, अनन्तवीरज वीरज कोषं॥ 3॥

सौरीप्रभ सौरीगुणमालं, सुगुण विशाल विशाल दयालं।
वज्रधार भवगिरि वज्जर हैं, चन्द्रानन चन्द्रानन वर हैं॥ 4॥

भद्रबाहु भद्रनि के करता, श्री भुजंग भुजंगम हरता।
ईश्वर सबके ईश्वर छाजैं, नेमिप्रभु जस नेमि विराजैं॥ 5॥

वीरसेन वीरं जग जानैं, महाभ्रद महाभद्र बखानैं।
नमों जसोधर जसधर कारी, नमों अजित वीरज बलधारी॥ 6॥

धनुष पाँच सौं काय विराजैं, आयु कोटि पूरब सब छाजैं।
समवसरण शोभित जिनराजा, भवजल-तारण-तरण जिहाजा॥ 7॥

सम्यक्रत्नत्रय निधि दानी, लोकालोक प्रकाशक ज्ञानी।
शत इन्द्रनि करि वन्दित सोहैं, सुर नर पशु सबके मन मोहैं॥ 8॥

(दोहा)

तुमको पूजैं वन्दना, करैं धन्य नर सोय।
द्यानत सरधा मन धरैं सो भी धरमी होय॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भजन

प्रभु पै यह वरदान सुपाऊँ, फिर जग कीच बीच नहीं आऊँ।टेक॥
जल गंधाक्षत पुष्प सुमोदक, दीप धूप फल सुन्दर ल्याऊँ।
आनन्द जनक कनक भाजन धरि, अर्घ अनर्घ हेतु पद ध्याऊँ॥1॥
आगम के अभ्यास मांहि पुनि, चित एकाग्र सदैव लगाऊँ।
संतनि की संगति तजि के मैं, अन्य कहूँ इक छिन नहिं जाऊँ॥2॥
दोषवाद में मौन रहूँ फिर, पुण्य पुरुष गुण निश-दिन गाऊँ।
राग-दोष सब ही को टारी, वीतराग निज भाव बढ़ाऊँ॥3॥
बाहिर दृष्टि खेंच के अन्दर, परमानन्द स्वरूप लखाऊँ।
'भागचन्द' शिव प्राप्त न जोलों, तोलों तुम चरणाम्बुज ध्याऊँ॥4॥

श्री सीमन्धरजिन पूजन

(कुण्डलिया)

भव-समुद्र सीमित कियो, सीमन्धर भगवान।
कर सीमित निजज्ञान को, प्रगट्यो पूरण ज्ञान॥
प्रगट्यो पूरण ज्ञान-वीर्य-दर्शन सुखधारी।
समयसार अविकार विमल चैतन्य-विहारी॥
अन्तर्बल से किया प्रबल रिपु-मोह पराभव।
अरे भवान्तक! करो अभय हर लो मेरा भव॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिन! अत्र अवतर, अवतर, संवौषट् इति आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिन! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिन! अत्र मम सन्निहितो, भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(वीरछन्द)

प्रभुवर तुम जल से शीतल हो, जल से निर्मल अविकारी हो।
मिथ्यामल धोने को जिनवर, तुम ही तो मलपरिहारी हो॥
तुम सम्यग्ज्ञान जलोदधि हो, जलधर अमृत बरसाते हो।
भविजन मनमीन प्राणदायक, भविजन मन-जलज खिलाते हो॥
हे ज्ञानपयोनिधि सीमन्धर! यह ज्ञानप्रतीक समर्पित है।
हो शान्त ज्ञेयनिष्ठा मेरी, जल से चरणाम्बुज चर्चित है॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन-सम चन्द्रवदन जिनवर, तुम चन्द्रकिरण से सुखकर हो।
भवताप निकन्दन हे प्रभुवर! सचमुच तुम ही भवदुःखहर हो॥
जल रहा हमारा अन्तःस्थल, प्रभु इच्छाओं की ज्वाला से।
यह शान्त न होगा हे जिनवर! रे विषयों की मधुशाला से॥

चिर-अन्तर्दाह मिटाने को, तुम ही मलयागिरि चन्दन हो।
चन्दन से चरचूँ चरणाम्बुज भव-तप-हर! शत-शत वन्दन हो॥
ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु! अक्षतपुर के वासी हो, मैं भी तेरा विश्वासी हूँ।
क्षत-विक्षत में विश्वास नहीं, तेरे पद का प्रत्याशी हूँ॥
अक्षत का अक्षत-सम्बल ले, अक्षत-साम्राज्य लिया तुमने।
अक्षत-विज्ञान दिया जग को, अक्षत ब्रह्माण्ड किया तुमने॥
मैं केवल अक्षत-अभिलाषी, अक्षत अतएव चरण लाया।
निर्वाण-शिला के संगम-सा, धवलाक्षत मेरे मन भाया॥
ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

तुम सुरभित ज्ञान-सुमन हो प्रभु, नहिं राग-द्वेष दुर्गन्ध कहीं।
सर्वाङ्ग सुकोमल चिन्मय तन, जग से कुछ भी सम्बन्ध नहीं॥
निज अन्तर्वास सुवासित हो, शून्यान्तर पर की माया से।
चैतन्य-विपिन के चितरंजन, हो दूर जगत की छाया से॥
सुमनों से मन को राह मिली, प्रभु कल्पबेलि से यह लाया।
इनको पा चहक उठा मन-खग, भर चोंच चरण में ले आया॥
ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

आनन्द रसामृत के द्रह हो, नीरस जड़ता का दान नहीं।
तुम मुक्त क्षुधा के वेदन से, षट् रस का नाम-निशान नहीं॥
विध-विध व्यञ्जन के विग्रह से, प्रभु भूख न शान्त हुई मेरी।
आनन्द सुधारस निर्झर तुम, अतएव शरण ली प्रभु तेरी॥
चिर-तृप्ति-प्रदायी व्यञ्जन से, हों दूर क्षुधा के अञ्जन ये।
क्षुत्पीड़ा कैसे रह लेगी? जब पाये नाथ निरञ्जन ये॥
ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चिन्मयविज्ञान-भवन अधिपति, तुम लोकालोक प्रकाशक हो।
कैवल्यकिरण से ज्योतित प्रभु! तुम महामोहतम नाशक हो॥
तुम हो प्रकाश के पुञ्ज, नाथ! आवरणों की परछाँह नहीं।
प्रतिबिम्बित पूरी ज्ञेयावली, पर चिन्मयता को आँच नहीं॥
ले आया दीपक चरणों में, रे! अन्तर आलोकित कर दो।
प्रभु तेरे मेरे अन्तर को अविलम्ब निरन्तर से भर दो॥
ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धू-धू जलती दुःख की ज्वाला, प्रभु त्रस्त निखिल जगतीतल है।
बेचेत बड़े सब देही हैं, चलता फिर राग प्रभञ्जन है॥
यह धूम घूमरी खा-खाकर, उड़ रहा गगन की गलियों में।
अज्ञान-तमावृत चेतन त्यों, चौरासी की रङ्ग-रलियों में॥
सन्देश धूप का तात्त्विक प्रभु, तुम हुए ऊर्ध्वगामी जग से।
प्रकटे दशाङ्ग प्रभुवर तुम को, अन्तःदशाङ्ग की सौरभ से॥
ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ-अशुभ वृत्ति एकान्त दुःख अत्यन्त मलिन संयोगी है।
अज्ञान विधाता है इनका, निश्चित चैतन्य विरोधी है॥
काँटो सी पैदा हो जाती, चैतन्य-सदन के आँगन में।
चञ्चल छाया की माया-सी, घटती क्षण में बढ़ती क्षण में॥
तेरी फल-पूजा का फल प्रभु! हों शान्त शुभाशुभ ज्वालायें।
मधुकल्पफलों सी जीवन में, प्रभु! शान्ति लतायें छा जायें॥
ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्मल जल-सा प्रभु निजस्वरूप, पहिचान उसी में लीन हुए।
भव ताप उतरने लगा तभी, चन्दन-सी उठी हिलोर हिए॥

अभिराम भवन प्रभु अक्षत का सब शक्ति-प्रसून लगे खिलने।
क्षुत् तृषा अठारह दोष क्षीण, कैवल्य प्रदीप लगा जलने॥
मिट चली चपलता योगों की, कर्मों के ईंधन ध्वस्त हुए।
फल हुआ प्रभो! ऐसा मधुरिम, तुम धवल निरञ्जन स्वस्थ हुए॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

वैदही हो देह में, अतः विदेही नाथ।
सीमन्धर निज सीम में, शाश्वत करो निवास॥ 1॥
श्री जिन पूर्व विदेह में, विद्यमान अरहन्त।
वीतराग सर्वज्ञ श्री सीमन्धर भगवन्त॥ 2॥

(पद्धरि)

हे ज्ञानस्वभावी सीमन्धर! तुम हो असीम आनन्दरूप।
अपनी सीमा में सीमित हो, फिर भी हो तुम त्रैलोक्य भूप॥ 3॥

मोहान्धकार के नाश हेतु, तुम ही हो दिनकर अति प्रचण्ड।
हो स्वयं अखण्डित कर्म शत्रु को, किया आपने खण्ड-खण्ड॥ 4॥

गृहवास राग की आग त्याग, धारा तुमने मुनिपद महान।
आतमस्वभाव साधन द्वारा, पाया तुमने परिपूर्ण ज्ञान॥ 5॥

तुम दर्शन ज्ञान दिवाकर हो, वीरज मण्डित आनन्दकन्द।
तुम हुए स्वयं में स्वयंपूर्ण, तुम ही सच्चे पूर्णचन्द॥ 6॥

पूरब विदेह में हे जिनवर! हो आप आज भी विद्यमान।
हो रहा दिव्य उपदेश, भव्य पा रहे नित्य अध्यात्म ज्ञान॥ 7॥

श्री कुन्दकुन्द आचार्यदेव को, मिला आपसे दिव्यज्ञान।
आत्मानुभूति से कर प्रमाण, पाया उनने आनन्द महान॥ 8॥

पाया था उनने समयसार, अपनाया उनने समयसार।
समझाया उनने समयसार, हो गये स्वयं वे समयसार॥ 9॥

दे गये हमें वे समयसार, गा रहे आज हम समयसार।
है समयसार बस एक सार, है समयसार बिन सब असार॥10॥

मैं हूँ स्वभाव से समयसार, परिणति हो जाये समयसार।
है यही चाह, है यही राह, जीवन हो जाये समयसार॥ 11॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

समयसार है सार, और सार कुछ है नहीं।
महिमा अपरम्पार, समयसारमय आपकी॥ 12॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

सीमन्धर मुख से फुलवा खिरें, जाकी कुन्दकुन्द गूँथे माल रे।
जिनजी की वाणी भली रे, सीमन्धर मुख से फुलवा खिरें॥ टेक॥

वाणी प्रभु मन लागे भली, जिसमें सार समय शिरताज रे।
जिनजी की वाणी भली रे, सीमन्धर मुख से फुलवा खिरें॥

गूँथा पाहुड़ अरु गूँथा पंचास्ति, गूँथा जो प्रवचनसार रे।
जिनजी की वाणी भली रे, सीमन्धर मुख से फुलवा खिरें॥

गूँथा नियमसार गूँथा रयणसार, गूँथा समय का सार रे।
जिनजी की वाणी भली रे, सीमन्धर मुख से फुलवा खिरें॥

श्री वर्तमान चौबीसी पूजन

वृषभ अजित सम्भव अभिनन्दन, सुमति पद्म सुपार्श्व जिनराय।
चन्द्र पहुप शीतल श्रेयांस जिन, वापुपूज्य पूजित सुरराय॥
विमल अनन्त धर्म जस-उज्ज्वल, शान्ति कुन्थु अर मल्लिमनाय।
मुनिसुव्रत नमि नेमि पार्श्व प्रभु, वर्द्धमान पद पुष्प चढ़ाय॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तचतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र अवतर, अवतर, संवौषट् इति आह्वाननम्। ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तचतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठः ठः इति स्थापनम्। ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तचतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र मम सन्निहितो, भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

मुनि-मन-सम उज्ज्वल नीर, प्रासुक गन्ध भरा।
भरि कनक-कटोरी धीर, दीनी धार धरा॥
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही।
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

गोशीर कपूर मिलाय, केशर रङ्ग भरी।
जिन-चरनन देत चढ़ाय, भव आताप हरी॥ चौबीसों. ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

तन्दुल सितसोम-समान सुन्दर अनियारे।
मुक्ता-फल की उनमान पुञ्ज धरों प्यारे॥ चौबीसों. ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

वर-कंज कदम्ब कुरण्ड, सुमन सुगन्ध भरे।
जिन-अग्र धरें गुन-मण्ड, काम-कलंक हरे॥ चौबीसौं॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो: कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मन-मोहन मोदक आदि, सुन्दर सद्य बने।
रस-पूरित प्रासुक स्वाद, जजत क्षुधादि हने॥ चौबीसों. ॥
ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तम-खण्डन दीप जगाय, धारों तुम आगै।
सब तिमिर मोहक्षय जाय, ज्ञान-कला जागै॥ चौबीसों. ॥
ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशगन्ध हुताशन माहिं, हे प्रभु! खेवत हों।
मिस-धूम करम जर जाहिं, तुम पद सेवत हों॥ चौबीसों. ॥
ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुचि पक्व सुरस फल सार, सब ऋतु के ल्यायो।
देखत दृग-मन को प्यार, पूजत सुख पायो॥ चौबीसो. ॥
ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फल आठों शुचिसार, ताको अर्घ्य करों।
तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरों॥ चौबीसों. ॥
ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

श्रीमत तीरथनाथ-पद, माथ नाय हित होत।
गाऊँ गुणमाला अबै, अजर अमर पद देत॥

(दोहा)

जय भव-तम भंजन, जन-मन-कंजन, रंजन दिन-मणि, स्वच्छ करा।
शिवमग-प्रकाशक, अरिगण-नाशक चौबीसों जिनराज वरा॥

(पद्धरि)

जयऋषभदेव ऋिषिगन नमन्त, जय अजितजीत वसु अरि तुरन्त।
जय सम्भव भव-भय करत चूर, जय अभिनन्दन आनन्द पूर॥

जय सुमति सुमति-दायक दयाल, जय पद्म-पद्म दुतितनरसाल।
जय जय सुपास भव-पास नाश, जयचन्द चन्दतनदुति प्रकाश॥

जय पुष्पदन्त दुति-दन्त सेत, जय शीतल शीतल गुननिकेत।
जय श्रेयनाथ नुत सहसभुज्ज, जय वासव-पूजित वासुपूज्ज॥

जब विमल विमलपद देनहार, जय जय अनन्त गुनगण अपार,
जय धर्म धर्म शिवशर्म देत, जय शान्ति शान्ति पुष्टी करेत॥

जय कुन्थु-कुन्थु आदिक रखेय, जय अरजिन वसुअरि छय करेय।
जय मल्लिमल्ल हत मोहमल्ल, जय मुनिसुव्रत व्रत-शल्य-दल्ल॥

जय नमि नित वासवनुत सपेम, जय नेमिनाथ वृष चक्र नेम।
जय पारसनाथ अनाथ-नाथ, जय वर्द्धमान शिवनगर साथ॥

(त्रिभङ्गी)

चौबीस जिनन्दा, आनन्द-कन्दा, पाप-निकन्दा, सुखकारी।
तिन पद-जुग-चन्दा, उदय अमन्दा, वासव-वन्दा, हितकारी॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तचतुर्विंशतिजिनेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

भुक्ति-मुक्ति दातार, चौबीसों जिनराजवर।
तिन पद मन-वच-धार, जो पूजै सो शिव लहै॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

श्री आदिनाथजिन पूजन

नाभिराय मरुदेवि के नन्दन, आदिनाथ स्वामी महाराज।
सर्वार्थसिद्धि तैं आप पधारे, मध्यमलोक माहिं जिनराज॥
इन्द्रदेव सब मिलकर आये, जन्म महोत्सव करने काज।
आह्वानन सब विधि मिल करके, अपने कर पूजें प्रभु आज॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर, अवतर, संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो, भव भव वषट्।

क्षीरोदधि का उज्ज्वल जल ले, श्री जिनवर पद पूजन जाय।
जन्म जरा दुःख मेटन कारन, ल्याय चढ़ाऊँ प्रभु के पांय॥
श्री आदिनाथ के चरणकमल पर, बलि-बलि जाऊँ मनवचकाय।
हे करुणानिधि भव-दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पांय॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयागिरि चन्दन दाह निकन्दन, कंचन झारी में भर ल्याय।
श्रीजी के चरण चढ़ावो भविजन, भव आताप तुरत मिट जाय॥ श्री॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभशालि अखण्डित सौरभमण्डित, प्रासुक जल सों धोकर ल्याय।
श्रीजी के चरण चढ़ावो भविजन, अक्षयपद को तुरत उपाय॥ श्री॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

कमल केतकी बेल चमेली, श्रीगुलाब के पुष्प मँगाय।
श्री जी के चरण चढ़ावो भविजन, कामबाण तुरतहि नसि जाय॥ श्री॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज लीना षट-रस भीना, श्री जिनवर आगे धरवाय।
थाल भराऊँ क्षुधा नसाऊँ, ल्याऊँ प्रभु के मङ्गल गाय॥ श्री॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जगमग-जगमग होत दशों दिश, ज्योति रही मन्दिर में छाय।
श्रीजी के सन्मुख करत आरती, मोहतिमिर नासै दुःखदाय॥ श्री. ॥
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अगर कपूर सुगन्ध मनोहर, चन्दन कूट सुगन्ध मिलाय।
श्रीजी के सन्मुख खेय धुपायन, कर्म जरे चहुँगति मिटि जाय॥ श्री. ॥
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल और बादाम सुपारी, केला आदि छुहारा ल्याय।
महा मोक्षफल पावन कारन, ल्याय चढ़ाऊँ प्रभु के पांय॥ श्री. ॥
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुचि निरमल नीरं गन्ध सुअक्षत, पुष्प चरु ले मनहरषाय।
दीप धूप फल अर्घ्य सुलेकर, नाचत ताल मृदङ्ग बजाय॥ श्री. ॥
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पञ्चकल्याणक

(दोहा)

सर्वार्थसिद्धि तैं चये, मरुदेवी उर आय।
दोज असित आषाढ़ की, जजूँ तिहारे पांय॥
ॐ ह्रीं श्री आषाढकृष्णद्वितीयायां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैतवदी नौमी दिना, जन्म्या श्री भगवान।
सुरपति उत्सव अति कर्या, मैं पूजौं धर ध्यान॥
ॐ ह्रीं श्री चैत्रकृष्णनवम्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तृणवत् ऋद्धि सब छाँड़ि के, तप धार्यो वन जाय।
नौमी चैत्र असेत की, जजूँ तिहारे पांय॥
ॐ ह्रीं श्री चैत्रकृष्णनवम्यां तपःकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

फागुन वदि एकादशी, उपज्यो केवलज्ञान।
इन्द्र आय पूजा करी, मैं पूजों इह थान॥

ॐ ह्रीं श्री फाल्गुनकृष्णैकादश्यां ज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

माघ चतुर्दशि कृष्ण की, मोक्ष गये भगवान।
भवि जीवों को बोधि के, पहुँचे शिवपुर थान॥

ॐ ह्रीं श्री माघकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

आदीश्वर महाराज, मैं विनती तुमसे करूँ।
चारों गति के मांहि, मैं दुःख पायो सो सुनो॥

अष्टकर्म मैं हूँ एकलो, यह दुष्ट महादुःख देत हो।
कबहूँ इतर निगोद में मोकूँ, पटकत करत अचेत हो॥
म्हारी दीनतणी सुन वीनती॥ टेक॥

प्रभु कबहुँक पटक्यो नरक में, जठै जीव महादुःखपाय हो।
नित उठि निरदई नारकी, जठै करत परस्पर घात हो॥
म्हारी दीनतणी सुन वीनती॥

प्रभु नरकतणां दुःख अब कहूँ, जठै करै परस्पर घात हो।
कोइयक बाँध्यो खम्भ सों, पापी दे मुदगर की मार हो॥
म्हारी दीनतणी सुन वीनती॥

कोइयक काटे करोत सों, पापी अङ्गतणी दोय फाड़ हो।
प्रभु यह विधि दुःखभुगत्या घणा, फिर गतिपाई तिरयंच हो॥
म्हारी दीनतणी सुन वीनती॥

हिरणा बकरा बाछला, पशु दीन गरीब अनाथ हो।
प्रभु मैं ऊँट बलद भैंसोभयो, जापैं लदियो भार अपार हो॥
म्हारी दीनतणी सुन वीनती॥

नहिं चाल्यौ जठै गिर पर्यो, पापी दे सोटन की मार हो।
प्रभु कोइयक पुण्यसंजोग सूँ, मैं तो पायो स्वर्ग निवास हो॥
म्हारी दीनतणी सुन वीनती॥

देवाङ्गना सङ्ग रमि रह्यो, जठै भोगनि को परिताप हो।
प्रभु सङ्ग अप्सरा रमि रह्यो, कर कर अति अनुराग हो॥
म्हारी दीनतणी सुन वीनती॥

कबहुँक नन्दनवन विषैं प्रभु, कबहुँक वन गृह माहिं हो।
प्रभु यह विधिकाल गमायकैं, फिर माला गयी मुरझाय हो॥
म्हारी दीनतणी सुन वीनती॥

देव तिथि सब घट गयी, फिर उपज्यो सोच अपार हो।
सोचकरत तन खिर पड्यो, फिर उपज्यो गरभ में जाय हो॥
म्हारी दीनतणी सुन वीनती॥

प्रभुगर्भतणा दुःख अब कहूँ, जठै संकड़ाई की ठौर हो।
हलन-चलन नहीं कर सक्यो, जठै सघन कीच घनघोर हो॥
म्हारी दीनतणी सुन वीनती॥

माता खावै चरपरो, फिर लागै तन सन्ताप हो।
प्रभु ज्यों जननी तातो भखै, फिर उपजै तनसन्ताप हो॥
म्हारी दीनतणी सुन वीनती॥

औंधे मुख झूल्यो रह्यो, फिर निकसन कौन उपाय हो।
कठिन-कठिनकर नीसर्‌यो, जैसे निसरैजंती में तार हो॥
म्हारी दीनतणी सुन वीनती॥

प्रभु फिर निकसतहो धरत्याँ पड्‌यो, फिर लागीभूख अपार हो।
रोय बिलख्या घणों, दुःख वेदन को नहिं पार हो॥
म्हारी दीनतणी सुन वीनती॥

प्रभु दुःख मेटन समरथ धनी, यातैं लागूँ तिहारे पाँय हो।
सेवक अरज करै प्रभु मोकूँ, भवदधि पार उतार हो॥
म्हारी दीनतणी सुन वीनती॥

(दोहा)

श्रीजी की महिमा अगम है, कोई न पावै पार।
मैं मति अल्प अज्ञान हों, कौन करै विस्तार॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विनती ऋषभ जिनेश की, जो पढ़सी मनलाय।
सुरगों में संशय नहीं, निहचै शिवपुर जाय॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

धन्य दिवस धनि या धरी, धन्य भाग मुझ आज,
जनम सफल अब ही भयो, वन्दत जिन महाराज।
(श्री बुधजन सतसई, दोहा 20)

श्रीआदिनाथ जिन पूजन

(दोहा)

नमूँ जिनेश्वर देव मैं, परम सुखी भगवान,
आराधूँ शुद्धात्मा, पाऊँ पद निर्वाण।

हे धर्म पिता सर्वज्ञ जिनेश्वर, चेतन मूर्ति आदि जिनं,
मेरा ज्ञायक रूप दिखाने, दर्पण सम प्रभु आदि जिनं।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण पा, सहज सुधारस आप पिया,
मुक्ति मार्ग दर्शाकर स्वामी, भव्यों प्रति उपकार किया।

(दोहा)

साधक शिवपद का अहो, आया प्रभु के द्वार,
सहज शुद्धातम भावना, जिन पूजा का सार।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सिन्नहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम् ।

चेतनमय है सुख सरोवर, श्रद्धा पुष्प सुशोभित है,
आनन्द मोती चुगते हंस, सुकेलि करैं सुख पावत हैं।
स्वानुभूति के कलश कनकमय, भरि-भरि प्रभु को पूजैं हैं,
ऐसे धर्मी निर्मल जल से, मोह मैल को धोते हैं।

अथाह सरवर आत्मा, आनन्द रस छलकाय,
आत्म शान्त रस पान से, जन्म मरण मिट जाय।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्रायः जन्मजरा-मृत्युरोग विनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

मग्न प्रभु चेतन सागर में, शान्ति जल से न्हाय रहे,
मोह मैल को दूर हटाकर, भवाताप से रहित भये
तृप्त हो रहा मोह ताप से, सम्यक् रस में स्नान करूँ,
समरस चन्दन से पूजूं अरु, तेरा पथ अनुसरण करूँ।

चेतन रस को घोलकर, चारित्र सुगन्ध मिलाय,
भाव सहित पूजा करूँ, शीतलता प्रगटाय।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्रायः संसारतापविनाशाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्ष अगोचर प्रभो आप, पर अक्षत से पूजा करूँ,
अक्षातरित ज्ञान को करके, अक्षत पद को प्राप्त करूँ।
अन्तर्लक्षी ज्ञान के द्वारा, प्रभुवर का सम्मान करूँ,
पूजूँ जिनवर परमभाव से, निज सुख का आस्वाद करूँ।
अक्षय सुख का स्वाद लूँ, इन्द्रिय मन के पार,
सिद्ध प्रभु सुख मगन ज्यों, तिष्ठे मोक्ष मंझाार।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्रायः अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

निष्काम अतीन्द्रिय देव! अहो पूजूँ मैं श्रद्धा सुमन चढ़ा,
कृतकृत्य निष्काम हुआ, तब मुक्ति मार्ग में कदम बढ़ा।
गुण अनंतमय पुष्प सुगन्धित, विकस रहे हैं आतम में,
कभी नहीं मुरझावे, परमानन्द पाया शुद्धातम में।
रत्नत्रय के पुष्प शुभ, खिले आत्म उद्यान,
सहजभाव से पूजते हर्षित हूँ भगवान।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्रायः कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तृप्त क्षुधा से रहित जिनेश्वर, क्या नैवेद्य से पूजा करूँ?
अनुभव रसमय नैवेद्य सांचा, तुम चरणों में प्राप्त करूँ।
चाह नहीं किंचित भी स्वामी, स्वयं स्वयं में तृप्त रहूँ,
सादि अनंत मुक्ति पद जिनवर, आत्मध्यान से प्रकट लहूँ।
जग का झूठा स्वाद ये, चाख्यो बार अनंत,
वीतराग निज स्वाद लूँ, होवे भव का अन्त।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्रायः क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अगणित दीपों का प्रकाश भी, दूर नहीं अज्ञान करे,
आत्मज्ञान की एक किरण ही, मोहतिमिर को तुरत हरे।
अहो ज्ञान की अद्‌भुत महिमा, मोही नहिं पहिचान सकें,
आत्मज्ञान का दीप जलाकर, साधक तेरी पूजा करें।
स्वानुभूति प्रकाश में, भासे आत्म स्वरूप,
राग पवन लागे नहीं, केवल ज्योति अनूप।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय! मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

द्वेष भाव तो नहीं रहा, रागांश मात्र नि:शेष हुआ,
ध्यान अग्नि प्रगटी ऐसी, तहाँ कर्मेन्धन सब भस्म हुआ।
अहो आत्मशुद्धि अद्‌भुत है, धर्म सुगन्धी फैल रही,
दशलक्षण की प्राप्ती करने, प्रभु चरणों की शरण गही।
स्व सन्मुख हो अनुभवूँ, ज्ञानानन्द स्वभाव,
निज में ही हो लीनता, विनसै सर्व विभाव।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय!अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक् दर्शन मूल अहो, चारित्र वृक्ष पल्लवित हुआ,
स्वानुभूति मय अमृतफल, आस्वादूँ अति ही तृप्त हुआ।
मोक्ष महाफल भी आवेगा, निश्चय ही विश्वास अहो,
निर्विकल्प हो पूर्ण लीनता, फल पूजा का प्रभु फल हो।
निर्वांछक आनन्दमय, चाह न रही लगार,
भेद न पूजक पूज्य का, फल पूजा का सार।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय! मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक् तत्व स्वरूप न जाना, नहीं यथार्थत: पूज सका,
राग भाव को रहा पोषता, वीतरागता से चूका।
काल लब्धि जागी अंतर में, भास रहा है सत्य स्वरूप

पाऊँगा निज सम्यक् प्रभुता, भास रही निज माँही अनूप।
सेवा सत्य स्वरूप की, ये ही प्रभु की सेव,
जिन सेवा व्यवहार से, निश्चय आतम देव।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय! अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच कल्याणक अर्घ

द्वितीया कृष्ण असाढ़, मरुदेवी के गर्भ में
आये बसे प्रभु आप, सर्वार्थ सिद्धि विमान तैं।
गर्भवास दुख रूप तहाँ भी प्रभु आनन्दमय,
माँ को भी नहीं कष्ट, रत्न पिटारे ज्यों रहे।

ॐ ह्रीं श्री आषाढ़कृष्णद्वितीयायां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नवमी कृष्णा चैत, भयो जन्म कल्याण मय,
नरकों में भी नाथ, इक क्षण को साता भई।
इन्द्रादिक भी आय, कियो महोत्सव जन्म को,
मेरू पर अभिषेक, क्षीरोदधि जल तैं भयो।

ॐ ह्रीं श्री चैत्रकृष्णनवम्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भासो जगत आसार, देख निधन नीलांजना,
नवमी कृष्णा चैत्र परम दिगम्बर पद धरो।
चिदानन्द पद सार, ध्यावन को मुनि पद धरो,
लौाकान्तिक सुर आय, अनुमोदा वैराग्य को।

ॐ ह्रीं श्री चैत्रकृष्णनवम्यां तप:कल्याणकप्राप्ताय श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रगट्यो केवल ज्ञान, फाल्गुन कृष्ण एकादशी,

धर्म तीर्थ सुखकार, हुआ प्रवर्तित आप से।
समझो तत्व स्वरूप, दिव्य देशना श्रवण कर,
पाई मुक्ति अनूप, भव्यन निज पुरुषार्थ में।

ॐ ह्रीं श्रीफाल्गुनकृष्णएकादश्यां ज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पायो अविचल थान, चौदश कृष्णा माघ दिन,
गिरि कैलाश महान, तीर्थ प्रगट जग में भयो।
सहज मुक्ति अविकार, शुद्धातम की भावना,
वर्ते प्रभु सुखकार, मैं भी तिष्ठूँ आप ढ़िग।

ॐ ह्रीं श्रीमाघकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षकल्याणकप्राप्ताय श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

आदीश्वर वन्दूं सदा, चिदानन्द छलकाय,
चरण शरण में आपकी, मुक्ति सहज दिखलाय।

धन्य ध्यान में आप विराजे, देख रहे प्रभु आतमराम,
ज्ञाता द्रष्टा अहो जिनेश्वर, परम ज्योतिमय आनन्दधाम।
रत्नत्रय आभूषण सांचे, जड़ आभूषण का क्या काम,
रागद्वेष निःशेष हुए हैं, वस्त्र-शस्त्र का लेश न नाम।
तीनलोक के स्वयं मुकुट हो, स्वर्ण मुकुट का है क्या काम,
प्रभुत्रिलोक के नाथ कहाओ, फिर भी निज में ही विश्राम।
भव्य निहारें अहो आपको, आप निहारें अपनी ओर,
धन्य आपकी वीतरागता, प्रभु प्रभुता का ओर न छोर।
आप नहीं देते कुछ भी पर भक्त आपसे ले लेते,
दर्शन कर उपदेश श्रवण कर, तत्वज्ञान को पा लेते।

भेदज्ञान अरु स्वानुभूति कर शिव पथ में लग जाते हैं,
अहो आप सम स्वाश्रय द्वारा, निज प्रभुता प्रगटाते हैं।
जब तक मुक्ति नहीं होती, प्रभु पुण्य सातिशय होने से,
चक्री इन्द्रादिक के वैभव मिलें अन्न संग के तुष से।
पर उनको चाहे नहीं ज्ञानी, मिलें किन्तु आसक्त न हो,
निजानन्द अमृत रस पीते, विष फल चाहे कौन अहो।
भावैं नित वैराग्य भावना, क्षण में छोड़ चले जाते,
मुनि दीक्षा ले परम तपस्वी, निजमें ही रमते जाते।
घोर परीषह उपसर्गों में मन सुमेरु नहीं कम्पित हो,
क्षण-क्षण आनन्दरस वृद्धिगंत, क्षपक श्रेणि आरोहण हो।
शुक्ल ध्यान बल घाति विनष्टे, अर्हंत् दशा प्रगट होती,
अल्पकाल में सर्व कर्ममल, वर्जित मुक्ति सहज होती।
परमानंद मय दर्श आपका, मंगल उत्तम शरण ललाम,
निरावरण निर्लेप परम प्रभु, सम्यक् भावे सहज प्रणाम।
ज्ञान माँहि स्थापन कीना, स्व सन्मुख होकर अभिराम,
स्वयं सिद्ध सर्वज्ञ स्वभावी, प्रत्यक्ष निहारूँ आतमराम।

प्रभु नन्दन मैं आपका, हूँ प्रभुता सम्पन्न,
अल्पकाल में आपके, तिष्ठुँगा आसन्न।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दर्शन ज्ञान स्वभाव मय, सुख अनंत की खान,
जाके आश्रय प्रगटता, अविचल पद निर्वान।

इत्याशीर्वादः।

श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजन

(छप्पय)

चरुचरन आचरन, चरन चितहरनचिह्नचर,
चन्दचन्दतनचरित, चंदथल चहत चतुर नर।
चतुक चण्ड चकचूरि, चारि चिदचक्र गुनाकर,
चंचल चलितसुरेश, चूलनुत चक्र धनुरहर॥
चर-अचर हितु तारनतरन, सुनत चहकि चिरनंद शुचि।
जिनचंदचरन चरच्यो चहत, चितचकोर नचि रचि रुचि॥

(दोहा)

धनुष डेढ़ सौ तुंग तन, महासेन नृप नन्द।
मातु लछमना उर जये, थापों चन्द जिनन्द॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्र! अत्र अवतर, अवतर, संवौषट् इति आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो, भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

गंगाह्रद निरमल नीर, हाटक भृंगभरा,
तुम चरन जजों वर वीर, मेटो जनम-जरा।
श्रीचंद्रनाथ दुति चंद, चरनन चंद लगे,
मन-वच-तन जजत अमंद, आतमजोति जगे॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री खण्ड कपूर सुचंग, केशर रंगभरी।
घसि प्रासुक जल के संग, भव-आताप हरी॥श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

तन्दुल सित सोमसमान, सम ले अनियारे।
दिये पुंज मनोहर आन, तुम पदतर प्यारे॥श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

सुरद्रुम के सुमन सुरंग, गन्धित अलि आवै।
तासों पद पूजत चंग, कामबिथा जावै॥ श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नैवज नाना परकार, इन्द्रिय बलकारी।
सो लै पद पूजों सार, आकुलताहारी॥ श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तम भंजन दीप सँवार, तुम ढिंग धारतु हों।
मम तिमिरमोह निरवार, यह गुन धारतु हों॥ श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशगंध हुतासन माहिं, हे प्रभु खेवतु हौं।
मम करम दुष्ट जरि जाहिं, यांतै सेवतु हौं॥ श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अति उत्तम फल सुमँगाय, तुम गुन गावतु हौं।
पूजौं तन-मन हरषाय, विघन नशावतु हौं॥ श्री॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सजि आठों दरब पुनीत, आठों अंग नमों।
पूजों अष्टम जिन मीत, अष्टम अवनि गमों॥ श्री॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पञ्चकल्याणक

कलि पंचम चैत सुहात अली, गरभागम मंगल मोद भली।
हरि हर्षित पूजत मातु पिता, हम ध्यावत पावत शर्मसिता॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णपंचम्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं नि. स्वाहा।

कलि पौष इकादशि जन्म लयो, तब लोकविषैंसुख थोक भयो।
सुर-ईश जजें गिरशीश तबै, हम पूजत हैं नुतशीश अबै॥

ॐ ह्रीं श्री पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं नि. स्वाहा।

तप दुद्धर श्रीधर आप धरा, कलि पौष इग्यारसी पर्व वरा।
निज ध्यान विषैं लवलीन भये, धनि सो दिन पूजत विघ्न गये॥
ॐ ह्रीं श्री पौषकृष्णैकादश्यां तपकल्याणकप्राप्ताय श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं नि. स्वाहा।

वर केवलभानु उद्योत कियो, तिहुँ लोक तणों भ्रम मेट दियो।
कलि फाल्गुन सप्तमी इन्द्र जजे, हम पूजहिं सर्व कलंक भजे॥
ॐ ह्रीं श्री फाल्गुनकृष्णसप्तम्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं नि. स्वाहा।

सित फाल्गुन सप्तमी मुक्त गये, गुणवन्त अनन्त अबाध भये।
हरि आय जजें तित मोद धरे, हम पूजत ही सब पाप हरें॥
ॐ ह्रीं श्री फाल्गुनशुक्लसप्तम्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं नि. स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

हे मृगांकअंकित चरण, तुम गुण अगम अपार।
गणधर से नहिं पार लहिं, तौ को वरनत सार॥
पै तुम भगति हिये मम, प्रेरैं अति उमगाय।
तातैं गाऊँ सुगुण तुम, तुम ही होउ सहाय॥

(पद्धरिछन्द)

जय चन्द्र जिनेन्द्र दयानिधान, भवकानन हानन दव प्रमान।
जय गरभ जनम मंगल दिनन्द, भवि जीवविकाशन शर्मकन्द॥

दशलक्ष पूर्व की आयु पाय, मनवांछित सुख भोगे जिनाय।
लखि कारण ह्वै जगतैं उदास, चिन्त्यो अनुप्रेक्षा सुखनिवास॥

तित लौकांतिक बोध्यो नियोग, हरि शिविका सजि धरियो अभोग।
तापै तुम चढ़ि जिन चन्दराय, ता छिनकी शोभा को कहाय॥

जिन अंग सेत सित चमर ढार, सित छत्र शीस गलगुलकहार।
सित रतन जड़ित भूषण विचित्र, सित चन्द्रचरण चरचैं पवित्र॥

सित तन द्युति नाकाधीश आप, सित शिवका काँधे धरि सुचाप।
सित सुजस सुरेश नरेश सर्व, सित चित में चिन्तित जात पर्व॥

सित चन्दनगरतैं निकसि नाथ, सित वन में पहुँचे सकल साथ।
सित शिला शिरोमणि स्वच्छ छाँह, सित तप तित धार्यो तुम जिनाँह॥

सित पय को पारण परमसार, सित चन्द्रदत्त दीनों उदार।
सित कर में सो पयधार देत, मानो बाँधत भवसिंधु सेत॥

मानो सुपुण्यधारा प्रतच्छ, तित अचरज पनसुर किय ततच्छ।
फिर जाय गहन सित तप करंत, सित केवलज्योति जग्यो अनंत॥

लहि समवसरण रचना महान, जाके देखत सब पापहान।
जहँ तरु अशोक शौभै उत्तंग, सब शोकतनो चूरैं प्रसंग॥

सुर सुमनवृष्टि नभतैं सुहात, मनु मन्मथ तज हथियार जात।
बानी जिन मुखसों खिरत सार, मनु तत्त्व प्रकाशन मुकुरधार॥

जहँ चौसठ चमर अमर ढुरंत, मनु सुजसमेध झरि लगिय तंत।
सिंहासन है जहँ कमलजुक्त, मनु शिवसरवर को कमलशुक्त॥

दुंदुभि जित बाजत मधुर सार, मनु करमजीत को है नगार।
सिर छत्र फिरै त्रय श्वेतवर्ण, मनु रतन तीन त्रयताप हर्ण॥

तन प्रभातनों मण्डल सुहात, भवि देखत निज भव सात सात।
मनु दर्पणद्युति यह जगमगाय, भविजन भव दुःख देखत सुआय॥

इत्यादि विभूति अनेक जान, बाहिज दीसत महिमा महान।
ताको वरणत नहिं लहत पार, तौ अँतरंग को कहै सार॥

अनअन्त गुणनिजुत करि विहार, धरमोपदेश दे भव्य तार।
फिर जोगनिरोधि अघाति हान, सम्मेदथकी लिय मुकतिथान॥

'वृन्दावन' वन्दत शीश नाय, तुम जानत हो मम उर जु भाय।
तातैं का कहों सु बार-बार, मनवांछित कारज सार-सार॥

(छन्द घत्तानन्द)

जय चन्द जिनंदा आनंदकंदा, भवभय भंजन राजै हैं।
रागादिक द्वन्दा हरि सब फन्दा, मुकति माहिं थिति साजै हैं।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जयमाला महाअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(छन्द चौबोला)

आठों दरव मिलाय गाय गुण, जो भविजन जिनचन्द जजैं।
ताके भव-भव के अघ भाजैं, मुक्त सारसुख ताहि सजैं॥
जमके त्रास मिटैं सब ताके, सकल अमंगल दूर भजैं।
'वृन्दावन' ऐसो लखि पूजत, जातैं शिवपुर राज रजैं॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

भजन

जिन-प्रतिमा जिनवर-सी कहिए।

भविक तुम वन्दहु मनधर भाव, जिन-प्रतिमा जिनवर-सी कहिए।
जाके दरस परम पद प्रापति, अरु अनंत शिव-सुख लहिए॥जिन. ॥

निज-स्वभाव निरमल है निरखत, करम सकल अरि घट दहिये।
सिद्ध समान प्रकट इह थानरु, निरख-निरख छवि उर गहिए॥जिन. ॥

अष्ट कर्म-दल भंज प्रकट भई, चिन्मूरति मनु बन रहिये।
जाके दरस परम पद प्रापति, अरु अनंत शिव-सुख लहिए॥जिन. ॥

त्रिभुवन मांहि अकृत्रिम कृत्रिम, वंदन नित-प्रति निरवहिये।
महा-पुण्य संयोग मिलत है, 'भैया' जिन प्रतिमा सरदहिये॥जिन. ॥

श्री शान्तिनाथजिन पूजन

या भवकानन में चतुरानन, पापपनासन घेरी हमेरी।
आतम जान न मान न ठान, न बान न होन दई शठ मेरी॥
ता-मद-भानन आपहि हो, यह छान न आन न आनन टेरी।
आन गही शरनागत को, अब श्रीपतजी पत राखहु मेरी॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर, अवतर, संवौषट् इति आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो, भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(छन्द त्रिभङ्गी)

हिमगिरितगगंगा, धार अभंगा, प्रासुक संगा, भरि भृंगा।
जरजनममृतंगा, नाशि अघंगा, पूजि पदंगा मृदुहिंगा॥
श्री शान्ति-जिनेशं, नुतशक्रेशं, वृषचक्रेशं, चक्रेशं।
हनि अरिचक्रेशं, हे गुनधेशं, दयामृतेशं, मक्रेशं॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

वर बावन चन्दन, कदली नन्दन, घन आनन्दन, सहित घसों।
भवताप-निकन्दन, ऐरानन्दन, वन्दि अमन्दन, चरन वसों॥ श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

हिमकर लज्जत, मलय सुसज्जत, अच्छत जज्जत, भरि थारी।
दुखदारिद गज्जत सदपदसज्जत, भवभय भज्जत, अतिभारी॥ श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

मन्दार सरोजं, कदली जोजं, पुंज भरोजं, मलयभरं।
भरि कंचनथारी, तुम ढिंग धारी, मदन विदारी, धीरधरं॥ श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पकवान नवीने पावन कीने, षट् रस भीने, सुखदायी।
मन मोदन हारे, छुदा विदारे, आगैं धारे गुनगाई॥ श्री. ॥
ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।
तुम ज्ञान प्रकाशे, भ्रम तम नाशे, ज्ञेयविकासे सुखराशे।
दीपक उजियारा यातैं धारा, मोह निवारा निज भासे॥ श्री. ॥
ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।
चन्दन करपूरं, करि वर चूरं, पावक भूरं मांहि जुरं।
तसु धूम उड़ावै नाचत जावै, अलि गुंजावै, मधुर स्वरं॥ श्री. ॥
ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।
बादाम खजूरं, दाड़िम पूरं, निंबुक भूरं लै आयो।
तासों पद जज्जों, शिवफल सज्जों, निज-रसरज्जों, उमगायो॥ श्री. ॥
ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।
वसु द्रव्य सवारी, तुम ढिंग धारी, आनन्दकारी, दृग-प्यारी।
तुम हो भवतारी, करुना-धारी, यातैं थारी, शरनारी॥ श्री. ॥
ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पञ्चकल्याणक

(छन्द सुन्दरी तथा द्रुततिलम्बित)

आसित सातें भादव जानिये, गरभ-मङ्गल ता दिन मानिये।
शचि किया जननी पद चर्चनं, हम करें इत ये पद अर्चनं॥
ॐ ह्रीं भाद्रपदसप्तमयां गर्भमङ्गलमण्डिताय श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।
जनम जेठ चर्तुदशी श्याम है, सकल इन्द्र सु आगत धाम हैं।
गजपूरै गजसाजि सबै, तबै, गिरि जजे इत मैं जजि हों अबै॥
ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममङ्गलमण्डिताय श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।
भव शरीर सुभोग असार हैं, इमि विचार तबै तप धार हैं।
भ्रमर चौदश जेठ सुहावनी, धरम-मेह जजों गुन-पावनी॥
ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्याँ तपो मङ्गलमण्डिताय श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि०स्वाहा।

शुकल पौष दशैं सुख-रास है, परम-केवलज्ञान प्रकाश है।
भवसमुद्र-उधारन देव की, हम करैं नित मङ्गल सेवकी॥

ॐ ह्रीं पौषशुक्लदशम्यां ज्ञानमङ्गलमण्डिताय श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।

असित-चौदशि जेठ हनें अरी, गिरि समेदथकी शिव-तियवरी।
सकल-इन्द्र जजैं तित आइकैं, हम जजैं इत मस्तक नाइकैं॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षमङ्गलमण्डिताय श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।

जयमाला

(छन्द - रथोद्धता, चंद्रवत्स, तथा चंद्रवर्त्म)

शान्ति शान्तिगुनमण्डिते सदा, जाहि ध्यावत सुपण्डिते सदा।
मैं तिन्हें भगत-मण्डिते सदा, पूजि हों कलुष हण्डिते सदा॥
मोच्छ-हेत तुम ही दयाल हो, हे जिनेश गुनरत्नमाल हो।
मैं अबै सुगुन-दाम ही धरों, ध्यावतें तुरत मुक्तितिती वरों॥

(पद्धरिछन्द)

जय शान्तिनाथ चिद्रूपराज, भव-सागर में अद्भुत जहाज।
तुम तजि सरवारथ सिद्ध थान, सरवारथ-जुत गजपुर महान॥
तित जनम लियौ आनन्द धार, हरि ततछिन आयो राजद्वार।
इन्द्रानी जाय प्रसूत-थान तुमको कर में ले हरष मान॥
हरि गोद देय सो मोद धार, सिर चमर अमर ढोरत अपार।
गिरिराज जाय तित शिला पाण्डु, तापै थाप्यौ अभिषेक माण्डु।
तित पञ्चम उदधितनों सुवार, सुरकर कर करि ल्याये उदार।
तब इन्द्र सहस-कर करि अनन्द, तुम सिर-धारा ढाय्यो सुनन्द॥
अघ घघ घघ घघ धुनिहोतघोर, भभ भभ भभ धध धध कलशशोर।
दृम दृम दृम दृम बाजत मृदंग, झन नन नन नन नन नूपुरंग॥

तन नन नन नन नन तनन तान, घन नन नन घण्टा करत ध्वान।
ताथेई थेई थेई थेई थेई सुचाल, जुत नाचत नावत तुमहिं भाल॥

चट चट चट अटपट नटत नाट, झट झट झट हट नट शट विराट।
इमि नाचत राचत भगत रङ्ग, सुर लेत जहाँ आनन्द सङ्ग॥

इत्यादि अतुल मङ्गल सुठाट, तित बन्यो जहाँ सुरगिरि विराट।
पुनि करि नियोग पितुसदन आय, हरि सौंप्यो तुम तित वृद्ध थाय॥

पुनि राजमाहिं लहि चक्र-रत्न, भोग्यो छह-खण्ड करि धरम जत्न।
पुनि तप धरि केवल ऋद्धि पाय, भविजीवन कों शिवमग बताय॥

शिवपुर पहुंचे तुम हे जिनेश, गुनमण्डित अतुल अनन्त भेष।
मैं ध्यावतु हों नित शीश नाय, हमरी भवबाधा हरि जिनाय॥

सेवक अपनो निज जान जान, करुणा करि भौ-भय भान भान।
यह विघन मूल तरु खण्ड-खण्ड, चित चिन्तत आनन्दमण्ड मण्ड॥

(छन्द घत्तानन्द)

श्री शान्ति महन्ता, शिवतिय कन्ता, सुगुन अनन्ता, भगवन्ता।
भव भ्रमन हनन्ता, सौख्य अनन्ता, दातारं तारनवन्ता॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(छन्द रूपक)

शान्तिनाथ-जिनके पद-पंकज, जो भवि पूजैं मन-वच-काय।
जनम जनम के पातक ताके, ततछिन तजिकैं जाय पलाय॥

मनवाञ्छित सुख पावै जो नर, ध्यावे भगति-भाव अति लाय।
तातैं, वृन्दावन नित बन्दैं, जातैं शिवपुर राज कराय॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

श्री नेमिनाथ जिन पूजन

जय श्री नेमीनाथ तीर्थङ्कर बाल ब्रह्मचारी भगवान।
हे जिनराज परम उपकारी करुणा सागर दया निधान॥
दिव्यध्वनि के द्वारा हे प्रभु तुमने किया जगतकल्याण।
श्री गिरनार शिखर से पाया तुमने सिद्ध स्वरूप निर्वाण।
आज तुम्हारे दर्शन करके निज स्वरूप का आया ध्यान।
मेरा सिद्ध समान सदा पद यह दृढ़ निश्चय हुआ महान॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

समकित जल की धारा से तो मिथ्याभ्रम धुल जाता है।
तत्त्वों का श्रद्धान स्वयं को शाश्वत मंगल दाता है॥
नेमिनाथ स्वामी तुम पद पंकज की करता हूँ पूजन।
वीतराग तीर्थङ्कर तुमको कोटि कोटि मेरा वन्दन॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय मिथ्यात्वमलविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक् श्रद्धा का पावन चन्दन भव ताप मिटाता है।
क्रोधकषाय नष्ट होती है निज की अरुचि हटाता है॥ नेमि. ॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय क्रोधकषायविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

भाव शुभाशुभ का अभिमानी मान कषाय बढ़ाता है।
वस्तु स्वभाव जान जाता तो मान कषाय मिटाता है॥ नेमि. ॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय मानकषायविनाशनाय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

चेतन छल से पर भावों का माया जाल बिछाता है।
भवभव की माया कषायको समकित पुष्प मिटाता है॥ नेमि. ॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय मायाकषायविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तृष्णा की ज्वाला से लोभी कभी नहीं सुख पाता है।
सम्यक् चरु से लोभ नाशकर यह शुचिमय हो जाता है ॥ नेमि. ॥
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय लोभकषायविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अन्धकार अज्ञान जगत में भव भव भ्रमण कराता है।
समकित दीप प्रकाशित हो तो ज्ञाननेत्र खुल जाता है॥ नेमि. ॥
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

पर विभाव परिणति में फंसकर निज का धुआँ उड़ाता है।
निजस्वरूप की गन्ध मिले तो पर की गन्ध जलाता है॥ नेमि. ॥
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय विभावपरिणति विनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निज स्वभाव फल पाकर चेतन महामोक्ष फल पाता है।
चहुँगति के बंधन कटते हैं सिद्ध स्वरूप पा जाता है॥ नेमि. ॥
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय महामोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फलादि वसु द्रव्य अर्घ से लाभ न कुछ हो पाता है।
जब तक निज स्वभाव में चेतन मग्न नहीं हो जाता है॥ नेमि. ॥
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच कल्याणक अर्घ

कार्तिक शुक्ला षष्ठी के दिन शिवदेवी उर धन्य हुआ।
अपराजित विमान से चयकर आये मोद अनन्य हुआ॥
स्वप्न फलों को जान सभी के मन में अति आनन्द हुआ।
नेमिनाथ स्वामी का गर्भोत्सव मंगल सम्पन्न हुआ॥
ॐ ह्रीं श्री कार्तिकशुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन शौर्यपुरी में जन्म हुआ।
नृपति समुद्रविजय आँगन में सुर सुरपति का नृत्य हुआ॥

मेरु सुदर्शन पर क्षीरोदधि जल से शुभ अभिषेक हुआ।
जन्म महोत्सव नेमिनाथ का परम हर्ष अतिरेक हुआ॥

ॐ ह्रीं श्री श्रावणशुक्लषष्ठ्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रावण शुक्ला षष्ठी को प्रभु पशुओं पर करुणा आई।
राजमती तज सहस्त्राम्र वन में जा जिन दीक्षा पाई॥
इन्द्रादिक ने उठा पालिकी हर्षित मंगलचार किया।
नेमिनाथ प्रभु के तपकल्याणक पर जयजयकार किया॥

ॐ ह्रीं श्री श्रावणशुक्लषष्ठ्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आश्विन शुक्ला एकम को प्रभु हुआ ज्ञान कल्याण महान।
उर्जयंत पर समवशरण में दिया भव्य उपदेश प्रधान॥
ज्ञानावरण, दर्शनावरणी मोहनीय का नाश किया।
नेमिनाथ ने अन्तराय क्षयकर कैवल्य प्रकाश लिया॥

ॐ ह्रीं श्री आश्विनशुक्लप्रतिपदा ज्ञानमंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री गिरनार क्षेत्र पर्वत से महामोक्ष पद को पाया।
जगती ने आषाढ़ शुक्ल सप्तमी दिवस मंगल गाया॥
वेदनीय अरु आयु नाम अरु गोत्र कर्म अवसान किया।
अष्ट कर्म हर नेमिनाथ ने परम पूर्ण निर्वाण लिया॥

ॐ ह्रीं श्री आषाढ़शुक्लसप्तम्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

जय नेमिनाथ नित्यादित जिन, जय नित्यानन्द नित्य चिन्मय।
जय निर्विकल्प निश्चल निर्मल, जय निर्विकार नीरज निर्भय॥

नृपराज समुद्र विजय के सुत माता शिवा देवी के नन्दन।
आनन्द शौर्यपुरी में छाया जय जय से गूंजा पाण्डुक वन॥
बालकपन में क्रीड़ा करते तुमने धारे अणुव्रत सुखमय।
द्वारिकापुरी में रहे अवस्था पाई सुन्दर यौवन वय॥
आमोद-प्रमोद तुम्हारे लख पूरा यादवकुल हर्षाता।
तब श्री कृष्ण नारायण ने जूनागढ़ से जोड़ा नाता॥
राजुल से परिणय करने को जूनागढ़ पहुँचे वर बनकर।
जीवों की करुणा पुकार सुनी जागा उर में वैराग्य प्रखर॥
पशुओं को बन्धन मुक्त किया कंगन विवाह का तोड़ दिया।
राजुल के द्वारे आकर भी स्वर्णिम रथ पीछे मोड़ लिया॥
रथत्याग चढ़े गिरनारी पर जा पहुँचे सहस्त्राम्र वन में।
वस्त्राभूषण सब त्याग दिये जिन दीक्षाधारी तनमन में॥
फिर उग्र तपश्या के द्वारा निश्चय स्वरूप मर्मज्ञ हुए।
घातिया कर्म चारों नाशे छप्पन दिन में सर्वज्ञ हुए॥
तीर्थङ्कर प्रकृति उदय आई सुरहर्षित समवसरण रचकर।
प्रभुगंधकुटि में अंतरीक्ष आसीन हुए पद्मासन धर॥
ग्यारह गणधर में थे पहले गणधर वरदत्त महाऋषिवर।
श्री मुख्य आर्यिका राजमती श्रोता थे अगणित भव्यप्रवर॥
दिव्यध्वनि खिरने लगी शाश्वत ओंकार घन गर्जन सी।
शुभ बारहसभा बनी अनुपम सौंदर्यप्रभा मणि कंचनसी॥
जगजीवों का उपकार किया भव्यों को शिवपथ बतलाया।
निश्चय रत्नत्रय की महिमा का परम मोक्षफल दर्शाया॥

कर प्राप्त चतुर्दश गुणस्थान योगों का पूर्ण अभाव किया।
कर उर्ध्वगमन सिद्धत्व प्राप्तकर सिद्धलोक आवास लिया॥
गिरनार शैल से मुक्त हुए तन के परमाणु उड़े सारे।
पावन मंगल निर्वाण हुआ सुरगण के गूँजे जयाकारे॥
नखकेश शेष थे देवों ने माया मय तन निर्वाण किया।
फिर अग्निकुमार सुरों ने आकर मुकुटानल से तन भस्म किया॥
पावन भस्मि का निज-निज के मस्तक पर सब ने तिलक किया।
मंगल वाद्यों की ध्वनि गूँजी निर्वाण महोत्सव पूर्ण किया॥
कर्मों के बन्धन टूटे गये पूर्णत्व प्राप्त कर सुखी हुए।
हम तो अनादि से हे स्वामी भव दुख बंधन से दुखी हुए॥
ऐसा अन्तरबल दो स्वामी हम भी सिद्धत्व प्राप्त करलें।
तुम पद चिन्हों पर चल प्रभुवर शुभ-अशुभ विभावों को हर लें॥
ध्रुव भाव शुद्ध का अर्चनकर हम अन्तर्ध्यानी बन जावें।
घातिया चारकर्मों को हर हम केवलज्ञानी बन जावें॥
शाश्वत शिवपद पाने स्वामी हम पास तुम्हारे आ जायें।
अपने स्वभाव के साधन से हम तीन लोक पर जय पायें॥
निज सिद्ध स्वपद पाने को प्रभु हर्षित चरणों में आया हूँ।
वसु द्रव्य सजाकर नेमीश्वर प्रभु पूर्ण अर्घ्य मैं लाया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शंख चिन्ह चरणों में शोभित जयजय नेमि जिनेश महान।
मन वच तन जो ध्यान लगाते वे हो जाते सिद्ध समान॥

॥ इत्याशीर्वादः॥

श्री पार्श्वनाथजिन पूजन

वर-स्वर्ग प्राणत को विहाय, सुमात वामा-सुत भये।
अश्वसेन के पारस जिनेश्वर, चरण तिनके सुर नये॥
नव हाथ उन्नत तन विराजै, उरग लक्षण अति लसै।
थापूँ तुम्हें जिन आय तिष्ठो, कर्म मेरे सब नसैं॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर, अवतर, संवौषट् इति आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो, भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(चामर छन्द)

क्षीर सोम के समान अम्बूसार लाइये।
हेमपात्र धारके सु आपको चढ़ाइये॥
पार्श्वनाथदेव सेव आपकी करूँ सदा।
दीजिये निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दनादि केसरादि स्वच्छ गन्ध लीजिये।
आप चर्न चर्च मोह ताप को हनीजिये॥ पार्श्वनाथ.॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

फेन चन्द के समान अक्षतं मँगाय के।
चर्ण के समीप धार पूज को रचाय के॥ पार्श्वनाथ.॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

केवड़ा, गुलाब और केत की चुनाइए।
धार चर्ण के समीप काम को नसाइए॥ पार्श्वनाथ.॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

घेवरादि बावरादि मिष्ट सद्य में सनें।
आप चर्ण अर्चतें क्षुधादि रोग को हनें॥ पार्श्वनाथ. ॥
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

लाय रत्नदीप को सनेह पूर के भरूँ।
वातिका कपूर वार मोह ध्वांत को हरूँ॥ पार्श्वनाथ. ॥
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूपगन्ध लेय के सुअग्नि सङ्ग जारिये।
तास धूप के सु सङ्ग कर्म अष्ट बारिये॥ पार्श्वनाथ. ॥
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

खारिकादि चिरभटादि रत्नथार में भरूँ।
हर्ष धार के जजूँ सुमोक्ष सौख्य को वरूँ॥ पार्श्वनाथ. ॥
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

नीर गन्ध अक्षतान् पुष्प चरु लीजिये।
दीप धूप श्रीफलादि अर्घ्यतें जजीजिये॥ पार्श्वनाथ. ॥
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पञ्च कल्याणक

(सावी छन्द)

शुभ प्राणतस्वर्ग विहाये, वामा माता उर आये।
वैशाखतनी दुति कारी, हम पूजें विघ्न निवारी॥
ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णद्वितीयायां गर्भमङ्गलमण्डिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।

जनमे त्रिभुवन सुखदाता, एकादशि पौष विख्याता।
श्यामा तन अद्भुत राजे, रवि कोटिक तेज सु लाजे॥
ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममङ्गलमण्डिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।

कलि पौष एकादशि आई, तब बारह भावन भायी।
अपने कर लोंच सुकीना, हम पूजें चर्न जजीना॥
ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां तपोमङ्गलमण्डिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा

कलि चैत चतुर्थी आई, प्रभु केवलज्ञान उपाई।
तब प्रभु उपदेश जु कीना, भविजीवन को सुख दीना॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णचतुर्थ्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।

सित सावन सातैं आई, शिव नार वरी जिनराई।
सम्मेदाचल हरि माना, हम पूजें मोक्षकल्याना॥

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लसप्तम्यां मोक्षमङ्गलमण्डिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।

जयमाला

(सवैया)

पारसनाथ जिनेन्द्रतने वच, पौनभखी जरतैं सुन पाये।
कर्यो सरधान लह्यो पद आन, भये पद्मावती शेष कहाये॥
नाम प्रताप टरै संताप, सुभव्यन को शिवशर्म दिखाये
हो अश्वसेन के नन्द भले, गुण गावत हैं तुमरे हरषाये॥

(दोहा)

केकी-कण्ठ समान छवि, वपु उतङ्ग नव हाथ।
लक्षण उरग निहार पग, वन्दूँ पारसनाथ॥

(मोतियादाम छन्द)

रची नगरी षट् मास अगार, बने चहुँ गोपुर शोभ अपार।
सु कोटतनी रचना छवि देत, कँगूरन पै लहकैं बहु केत॥
बनारस की रचना जु अपार, करी बहु भाँत धनेश तैयार।
तहाँ अश्वसेन नरेन्द्र उदार, करैं सुख वाम सु दे पटनार॥
तज्यो तुम प्राणत नाम विमान, भये तिनके घर नन्दन आन।
तबै पुर इन्द्र नियोगनि आय, गिरीन्द्र करी विधि न्होन सु जाय॥
पिता घर सौंप गये निज धाम, कुबेर करे वसु याम जु काम।
बढ़े जिन दूज मयंक समान, रमैं बहु बालक निर्जर आन॥
भये जब अष्टम वर्ष कुमार, धरे अणुव्रत महा सुखकार।
पिता जब आन करी अरदास, करो तुम ब्याह वरो मम आस॥

करी तब नाहिं रहे जगचन्द, किये तुम काम कषाय जु मन्द।
चढ़े गजराज कुमारन संग, सु देखत गंगतनी सुतरंग॥
लख्यो इक रंक करे तप घोर, चहूँ दिस अग्नि बले अतिजोर।
कहे जिननाथ अरे सुन भ्रता, करे बहुत जीवतनी मत घात॥
भयो तब कोप कहै कित जीव, जले तब नाग दिखाय सजीव।
लख्यो यह कारण भावन भाय, नये दिव-ब्रह्म-ऋषी सुर आय॥
तबै सुर चार प्रकार नियोग, धरी शिविका निज-कन्ध मनोग।
करयो बन माहिं निवास जिनन्द, धरे व्रत चारित आनन्द-कन्द॥
गहे तहाँ अष्टम के उपवास, गये धनदत्त तनें जु अवास।
दियो पयादान महा सुखकार भई पन वृष्टि तहाँ तिह वार॥
गये फिर कानन माहिं दयाल, धरयो तुम योग सबै अघ टाल।
तबै वह धू सुकेत अयान, भयो कमठाचर को सुर आन॥
करैं नभ गौन[1] लखे तुम धीर, जु पूरब बैर विचार गहीर।
करयो उपसर्ग भयानक घोर, चली बहु तीक्षण पवन झकारे॥
रह्यो दशहूँ दिश में तम छाय, लगी बहु अग्नि लखी नहिं जाय।
सुरुण्डन के बिन मुण्ड दिखाय, पड़े जल मूसल धार अथाय॥
तबै पद्मावति कन्त धरणेन्द, नये युग आय तहाँ जिनचन्द।
भग्यो तब रंक सु देखत हाल, लह्यो तब केवलज्ञान विशाल॥
दियो उपदेश महाहितकार, सुभव्यन बोधि सम्मेद पधार।
सुवर्ण भद्र जू कूट प्रसिद्ध, वरी शिवनारि लही वसु ऋद्ध॥
जजूँ तुम चर्ण दोऊ कर जोर, प्रभू लखिये अब ही मम ओर।
कहैं 'बखतावर' रतन बनाय, जिनेश हमें भव-पार लगाया॥

1. गगन

(घत्ता)

जय पारस-देवं, सुर-कृत सेवं, वन्दत चरण सुनागपती।
करूणा के धारी, पर-उपाकरी, शिव-सुखकारी कर्म हती॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय गर्भजन्मपोज्ञाननिर्वाणपंचकल्याणकप्राप्ताय जयमाला पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

(रोला)

जो पूजै मन लाय, भव्य पारस प्रभु नित ही।
ताके दुख सब जाँय, भीति व्यापै नहिं कित ही॥
सुख-सम्पत्ति अधिकाय, पुत्र-मित्रादिक सारे।
अनुक्रम सों शिव लहे, 'रतन' इम कहें पुकारे॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

भजन

चाह मुझे है दर्शन की, प्रभु के चरण स्पर्शन की॥ टेक.॥
वीतराग-छवि प्यारी है, जगजन को मनहारी है।
मूरत मेरे भगवन की, वीर के चरण स्पर्शन की॥ १॥
कुछ भी नहीं शृंगार किये, हाथ नहीं हथियार लिये।
फौज भगाई कर्मन की, प्रभु के चरण स्पर्शन की॥२॥
समता पाठ पढ़ाती है, ध्यान की याद दिलाती है।
नासादृष्टि लखो इनकी, प्रभु के चरण स्पर्शन की॥३॥
हाथ पे हाथ धरे ऐसे, करना कुछ न रहा जैसे।
देख दशा पद्मासन की, वीर के चरण स्पर्शन की ॥४॥
जो शिव-आनन्द चाहो तुम, इन-सा ध्यान लगाओ तुम
विपत हरे भव-भटकन की, प्रभु के चरण स्पर्शन की ॥५॥

श्री महावीर पूजन

(स्थापना)

जो मोह माया मान मत्सर, मदन मर्दन वीर हैं।
जो विपुल विघ्नों बीच में भी, ध्यान धारण धीर हैं॥
जो तरण-तारण, भव-निवारण, भव-जलधि के तीर हैं।
वे वन्दनीय जिनेश, तीर्थङ्कर स्वयं महावीर हैं॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्र! अत्र अवतर, अवतर, संवौषट् इति आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो, भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

जिनके गुणों का स्तवन पावन करन अम्लान है।
मन-हरन निर्मल-करन भागीरथी नीर समान है॥
संतप्त-मानस शान्त हों, जिनके गुणों के गान में।
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

लिपटे रहें विषधर तदपि चन्दन विटप निर्विष रहें।
त्यों शान्त शीतल ही रहो रिपु विघन कितने ही करें॥ संतप्त॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

सुख-ज्ञान-दर्शन-वीर जिन अक्षत समान अखण्ड हैं।
हैं शान्त यद्यपि तदपि जो दिनकर समान प्रचण्ड हैं॥ संतप्त॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रिभुवनजयी अविजित कुसुमसर सुभट मारन सूर हैं।
परगन्ध से विरहित तदपि निजगन्ध से भरपूर हैं॥ संतप्त॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

यदि भूख हो तो विविध व्यञ्जन मिष्ट-इष्ट प्रतीत हों।
तुम क्षुधा-बाधारहित जिन! क्यों तुम्हें उनसे प्रीति हो?॥ संतप्त. ॥
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

युगपत् विशद् सकलार्थ झलकें नित्य केवलज्ञान में।
त्रैलोक्य-दीपक वीर-जिन दीपक चढ़ाऊँ क्या तुम्हें?॥ संतप्त. ॥
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जो कर्म ईंधन दहन पावक पुञ्ज पवन समान हैं।
जो हैं अमेय प्रमेय पूरण ज्ञेय ज्ञाता ज्ञान हैं॥ संतप्त. ॥
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सारा जगत् फल भोगता नित पुण्य एवं पाप का।
सब त्याग समरस निरत जिनवर सफल जीवन आपका॥ संतप्त. ॥
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

इस अर्घ्य का क्या मूल्य है अनर्घ्य पद के सामने?
उस परम पद को पा लिया हे पतितपावन! आपने॥ संतप्त. ॥
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पञ्चकल्याणक

(सोरठा)

सित छठवीं आषाढ़, माँ त्रिशला के गर्भ में।
अन्तिम गर्भावास, यही जान प्रणमूँ प्रभो॥
ॐ ह्रीं आषाढ़शुक्लषष्ठम्यां गर्भमङ्गलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।

तेरस दिन सित चैत, अन्तिम जन्म लियो प्रभु।
नृप सिद्धार्थ निकेत, इन्द्र आय उत्सव कियो॥
ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममङ्गलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।

दशमी मगसिर कृष्ण, वर्द्धमान दीक्षा धरी।
कर्म कालिमा नष्ट, करने आत्मरथी बने॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोमङ्गलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।

सित दशमी बैसाख, पायो केवलज्ञान जिन।
अष्ट द्रव्यमय अर्घ्य, प्रभुपद पूजा करें हम॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानमङ्गलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।

कार्तिक मावस श्याम, पायो प्रभु निर्वाण तुम।
पावा तीरथधाम, दीपावली मनाँय हम॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमङ्गलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

यद्यपि युद्ध नहीं कियो, नाहिं रखे असि-तीर।
परम अहिंसक आचरण, तदपि बने महावीर॥

(पद्धरि)

हे मोह-महादलदलन वीर, दुद्धर-तप संयम धरण धीर।
तुम हो अनन्त आनन्दकन्द, तुम रहित सर्व जग दन्द-फन्द॥

अघकरन करन-मन-हरन-हार, सुखकरन हरन भवदुःख अपार।
सिद्धार्थ तनय तनरहित देव, सुर-नर-किन्नर सब करत सेव॥

मतिज्ञानरहित सन्मति जिनेश, तुम राग-द्वेष जीते अशेष।
शुभ-अशुभ राग की आग त्याग, हो गये स्वयं तुम वीतराग॥

षट् द्रव्य और उनके विशेष, तुम जानत हो प्रभुवर अशेष।
सर्वज्ञ वीतरागी जिनेश, जो तुम को पहिचाने विशेष॥

वे पहिचानें अपना स्वभाव, वे करें मोह-रिपु का अभाव।
वे प्रकट करें निज-पर विवेक, वे ध्यावें निज शुद्धात्म एक॥

निज आतम में ही रहें लीन, चारित्र-मोह को करें क्षीण।
उनका हो जावे क्षीण राग, वे भी हो जावें वीतराग॥

जो हुए आज तक अरिहन्त, सबने अपनाया यही पन्थ।
उपदेश दिया इस ही प्रकार, हो सबको मेरा नमस्कार॥

जो तुमको नहिं जानें जिनेश, वे पायें भव भव भ्रमण क्लेश।
वे माँगे तुमसे धन-समाज, वैभव पुत्रादिक राज-काज।

जिनको तुम त्यागे तुच्छ जान, वे उन्हें मानते हैं महान।
उनमें ही निशदिन रहें लीन, वे पुण्य-पाप में ही प्रवीण॥

प्रभु पुण्य-पाप से पार आप, बिन पहिचाने पावें संताप।
संतापहरण सुखकरण सार, शुद्धात्मस्वरूपी समयसार॥

तुम समयसार हम समयसार, सम्पूर्ण आत्मा समयसार।
जो पहिचानें अपना स्वरूप, वे हो जायें परमात्मरूप॥

उनको ना कोई रहे चाह, वे अपना लेवें मोक्ष राह।
वे करें आत्मा को प्रसिद्ध, वे अल्पकाल में होंय सिद्ध॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

भूतकाल प्रभु आपका, वह मेरा वर्तमान।
वर्तमान हो आपका, वह भविष्य मम जान॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

श्री पंच बालयति जिनपूजन

(हरिगीतिका)

निज ब्रह्म में नित लीन परिणति से सुशोभित हे प्रभो।
पूजित परम निज पारिणामिक से विभूषित हे विभो॥
आओ तिष्ठो अत्र तुम सन्निकट हो मुझमय अहो।
बालयति पाँचों प्रभु को वन्दना शत बार हो॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-मल्लि-नेमि-पार्श्व-वीराः पंचबालयतिजिनेन्द्राः। अत्र अवतरन्तु अवतरन्तु संवौषट् इति आह्वाननम्। अत्र तिष्ठन्तु तिष्ठन्तु ठः ठः इति स्थापनम्। अत्र मम सन्निहिता भवन्तु भवन्तु वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(वीरछन्द)

हे प्रभु ध्रुव की ध्रुव परिणति के पावन जल में कर स्नान।
शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्द का तुम करो निरन्तर अमृत-पान॥
क्षणवर्ती पर्यायों का तो जन्म-मरण है नित्य स्वभाव।
पंच बालयति -चरणों में हो पर-संयोग-वियोग अभाव॥

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

अहो! सुगन्धित चेतन अपनी परिणति में नित महक रहा।
क्षणवर्ती चैतन्य विवर्तन की ग्रन्थि में चहक रहा॥
द्रव्य और गुण पर्यायों में सदा महकती चेतन गन्ध।
पंच बालयति के चरणों में नाशूँ राग-द्वेष दुर्गन्ध॥

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

परिणामों के ध्रुव प्रवाह में बहे अखण्डित ज्ञायक भाव।
द्रव्य-क्षेत्र अरुकाल-भाव में नित्य अभेद अखण्ड स्वभाव॥
निज गुण-पर्यायों में जिनका अक्षय पद अविचल अभिराम।
पंच बालयति जिनवर मेरी परिणति में नित करो विराम॥

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

गुण अनन्त के सुमनों से हो शोभित तुम ज्ञायक उद्यान।
त्रैकालिक ध्रुव परिणति में तुम प्रतिपल करते नित्य विराम॥

इसके आश्रय से प्रभु तुमने नष्ट किया है काम-कलङ्क।
पंच बालयति के चरणों में धुला आज परिणति का पङ्क॥
ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रभ्यो कामबाणविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

हे प्रभु! अपने ध्रुव प्रवाह में रहो निरन्तर शाश्वत तृप्त।
षटरस की क्या चाह तुम्हें तुम निज रस के अनुभव में मस्त॥

तृप्त हुई अब मेरी परिणति ज्ञायक में करती विश्राम।
पंच बालयति के चरणों में क्षुधा-रोग का रहा न नाम॥
ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज ज्ञानमय ज्योति प्रज्ज्वलित रहती ज्ञायक के आधार।
प्रभो! ज्ञान-दर्पण में त्रिभुवन पल-पल होता ज्ञेयाकार॥

प्रभो! निरखती मम श्रुत-परिणति अपने में तव केवलज्ञान।
पंच बालयति के प्रसाद से प्रगट हुआ निज ज्ञायक भान॥
ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रैकालिक परिणति में व्यापी ज्ञान सूर्य की मङ्गल धूप।
जिसमें सकल-कर्म-मल क्षय कर हुए प्रभो! तुम त्रिभुवन भूप॥

मैं ध्याता तुम ध्येय हमारे मैं हूँ तुममय एकाकार।
पंच बालयति जिनवर! मेरे शीघ्र नशो अब त्रिविध विकार॥
ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज ज्ञान का ध्रुव प्रवाह फल सदा भोगता चेतनराज।
अपनी चित् परिणति में रमता पुण्य-पाप फल का क्या काज॥

महा मोक्षफल की न कामना शेष रहे अब हे जिनराज।
पंच बालयति के चरणों में जीवन सफल हुआ है आज॥
ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचम परमभाव की पूजित परिणति में जो करें विराम।
कारण परमपारिणामिक का अवलम्बन लेते अभिराम॥

वासुपूज्य अरु मल्लि-नेमिप्रभु-पार्श्वनाथ-सन्मति गुणखान।
अर्घ्य समर्पित पंच बालयति को पञ्चम गति लहूँ महान॥
ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

पंच बालयति नित बसो मेरे हृदय मँझार।
उनके उर में बस रहा प्रिय चैतन्य कुमार॥

(छप्पय)

प्रिय चैतन्य कुमार सदा परिणति में राजे,
पर-परिणति से भिन्न सदा नित में अनुरागे।

दर्शन-ज्ञानमयी उपयोग सुलक्षण शोभित,
जिसकी निर्मलता पर आतम ज्ञानी मोहित।

ज्ञायक त्रैकालिक बालयति मम परिणति में व्याप्त हो,
मैं नमूँ बालयति पंच को पंचम गति पद प्राप्त हो।

(वीरछन्द)

धन्य धन्य हे वासुपूज्य जिन! गुण अनन्त में करो निवास,
निज आश्रित परिणति में शाश्वत महक रही चैतन्य सुवास।

सत् सामान्य सदा लखते हो क्षायिक दर्शन से अविराम,
तेरे दर्शन से निज दर्शन पाकर हर्षित हूँ गुणखान॥
मोह-मल पर विजय प्राप्त कर महाबली हे मल्लि जिनेश,
निज गुण परिणति में शोभित हो शाश्वत मल्लिनाथ परमेश॥
प्रतिपल लोकालोक निरखते केवलज्ञान स्वरूप चिदेश,
विकसित हो चित् लोक हमारा तव किरणों से सदा दिनेश॥
राजमती तज नेमि जिनेश्वर! शाश्वत सुख में लीन सदा,
भोक्ता भोग्य विकल्प विलय कर निज में निज का भोग सदा।
मोह रहित निर्मल परिणति में करते प्रभुवर सदा विराम,
गुण अनन्त का स्वाद तुम्हारे सुख में बसता है अविराम॥
जिनका आत्म-पराक्रम लख कर कमठ शत्रु भी हुआ परास्त,
क्षायिक श्रेणी आरोहण कर मोह शत्रु को किया विनष्ट।
पार्श्वनाथ के चरण युगल में क्यों बसता यह सर्प कहो,
बल अनन्त लखकर जिनवर का चूर कर्म का दर्प अहो॥
क्षायिक दर्शन ज्ञान वीर्य से शोभित हैं सन्मति भगवान,
भरत क्षेत्र के शासन नायक अन्तिम तीर्थङ्कर सुखखान।
विश्व सरोज प्रकाशक जिनवर हो केवल-मार्तण्ड महान,
अर्घ्य समर्पित चरण-कमल में वन्दन वर्धमान भगवान॥

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालामहाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

पञ्चम भाव स्वरूप पञ्च बालयति को नमूँ।
पाऊँ शुद्ध स्वरूप निज कारण परिणाममय॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपेत)

श्रीपंचमेरु पूजन

(गीता)

तीर्थंकरों के न्हवन-जलतैं, भये तीरथ शर्मदा।
तातैं प्रदच्छन देत सुर-गन, पंच मेरुन की सदा॥
दो जलधि ढाई द्वीप में, सब गनत-मूल विराजहीं।
पूजौं असी जिनधाम-प्रतिमा, होंहि सुख दुःख भाजहीं॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्धिअस्सीजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति आह्वाननम्। ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्धिअस्सीजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्। ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्धिअस्सीजिनचैत्यालय -स्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(चौपाई आँचलीबद्ध)

शीतल-मिष्ट-सुवास मिलाय, जलसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमाजी को करों प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥

ॐ ह्रीं सुदर्शनविजयअचलमन्दरविद्युन्मालिपंचमेरुसम्बन्धिअस्सीजिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल केशर करपूर मिलाय, गन्ध सौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥ पाँचो. ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनअस्सीचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो संसारताप विनाशनाय चन्दनं नि० स्वाहा।

अमल अखण्ड सुगन्ध सुहाय, अच्छत सौं पूजौं जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥ पाँचो. ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनअस्सीचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतानत् निर्वपामीति स्वाहा।

बरन अनेक रहै महकाय, फूल सौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥ पाँचो. ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिअस्सीजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो कामवाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मन-बांधित बहुत तुरत बनाय, चरु सौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥ पाँचो. ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनअस्सीचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तम-हर उज्ज्वल ज्योति जगाय, दीप सौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥ पाँचो. ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनअस्सीचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

खेऊँ अगर अमल अधिकाय, धूपसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥ पाँचो. ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनअस्सीचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सुरस सुवर्ण सुगन्ध सुभाय, फलसौं पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥ पाँचो. ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनअस्सीचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आठ दरबमय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजौं श्रीजिनराय॥
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥ पाँचो. ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनअस्सीचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(सोरठा)

प्रथम सुदर्शन स्वामी, विजय अचल मन्दर, कहा।
विद्युन्माली नाम, पञ्चमेरु जग में प्रकट॥

(बेसरी)

प्रथम सुदर्शन मेरु विराजै, भद्रशाल वन भूपर छाजैं।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी॥

ऊपर पंच-शतक-पर सोहै, नन्दन-वन देखत मन मोहै।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी॥
साढ़े बासठ सहस ऊँचाई, वन सुमनस शोभै अधिकाई।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी॥
ऊँचे जोजन सहस छत्तीसं, पाण्डुकवन सोहै गिरि सीसं।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी॥
चारों मेरु समान बखानै, भूपर भद्रसाल चहुँ जाने।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन-वचन-तन वन्दना हमारी॥
ऊँचे पाँच शतक पर भाखे, चारों नन्दनवन अभिलाखे।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन-वचन-तन वन्दना हमारी॥
साढ़े पचपन-सहस उतंगा, वन सौमनस-चार बहुरंगा।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन-वचन-तन वन्दना हमारी॥
उच्च अठाइस सहस बताये, पाण्डुक चारों-वन शुभ गाये।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन-वचन-तन वन्दना हमारी॥
सुर नर चारन वन्दन आवै, सो शोभा हम किह मुख गावैं।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन-वचन-तन वन्दना हमारी॥

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनअस्सीचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो जयमाला महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

पञ्चमेरु की आरती, पढ़ै सुनै जो कोय।
'द्यानत' फल जानै प्रभु, तुरत महासुख होय॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

श्रीनन्दीश्वरद्वीप पूजन

(अडिल्ल)

सरब परब में बड़ो अठाई परव है।
नन्दीश्वर सुर जांहि लेय वसु दरव है॥
हमैं सकति सो नांहि इहाँ करि थापना।
पूजैं जिनगृह प्रतिमा है हित आपना॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिशि द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमा-समूह! अत्र अवतर, अवतर, संवौषट् इति आह्वाननम्।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिशि द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमा-समूह! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठः ठः इति स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिशि द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमा-समूह! अत्र मम सन्निहितो, भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(अवतार)

कंचन मणिमय भृंगार, तीरथ नीर भरा।
तिहुँ धार दयी निरवार, जामन मरन जरा॥
नन्दीश्वर श्री जिनधाम, बावन पुंज करों।
वसुदिन प्रतिमा अभिराम, आनन्द भाव धरों॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरदीपस्थजिनप्रतिमाभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्व० स्वाहा।

भवतपहर शीतल वास, सो चन्दन नाहीं।
प्रभु यह गुण कीजै साँच, आयो तुम ठाँही॥ नन्दी. ॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपस्थजिनप्रतिमाभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि० स्वाहा।

उत्तम अक्षत जिनराज, पुंज धरे सौहे।
सब जीते अक्षसमाज, तुम सम अरु को है॥ नन्दी. ॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपस्थजिनप्रतिमाभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि० स्वाहा।

तुम काम विनाशक देव, ध्याऊँ फूलनि सौं।
लहूँ शीललक्ष्मी एव, छूटों सूलन सौं॥ नन्दी. ॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपस्थजिनप्रतिमाभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि० स्वाहा।

नेवज इन्द्रिय बलकार, सो तुमने चूरा।
चरु तुम ढिंग सोहैं सार, अचरज है पूरा॥ नन्दी.॥
ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपस्थजिनप्रतिमाभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व० स्वाहा।

दीपक की ज्योति प्रकाश, तुम तन मांहि लसै।
टूटे करमन की राश, ज्ञानकणी दरसै॥ नन्दी.॥
ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपस्थजिनप्रतिमाभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि० स्वाहा।

कृष्णागरु-धूप-सुवास, दश दिशी नारि वरै।
अति हरषभाव परकाश, मानों नृत्य करै॥ नन्दी.॥
ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपस्थजिनप्रतिमाभ्यऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्व० स्वाहा।

बहुविधि फल ले तिहुँ काल, आनन्द राचत हैं।
तुम शिवफल देहु दयाल, तुहि हम जाँचत हैं॥ नन्दी.॥
ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपस्थजिनप्रतिमाभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

यह अरघ कियो निज हेत, तुमको अरपतु हों।
द्यानत कीज्यो शिवखेत, भूमि समरपतु हों॥ नन्दी.॥
ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपस्थजिनप्रतिमाभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

कार्तिक फागुन साढ़ के, अन्त आठ दिन मांहि।
नन्दीश्वर सुर जात हैं, हम पूजैं इह ठांहि॥

(नाराच)

एक-सौ त्रेसठ कोड़ि जोजन महा।
लाख चौरासिया एक दिश में लहा॥
आठमों दीप नन्दीश्वरं भास्वरं।
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं॥

चार दिशि चार अंजनगिरी राजहिं।
सहस चौरासिया एक दिश छाजहीं॥
ढोल-सम गोल ऊपर तले सुन्दरं॥ भौन॥
एक इक चार दिशि चार शुभ बावरी।
एक इक लाख जोजन अमल जलभरी॥
चहुँ दिशि चार वन लाख जोजन वरं॥ भौन॥
सोल वापीन मधि सोल गिरि दधिमुखं।
सहस दश महा जोजन लखत ही सुखं॥
बावरी कौन दो माहि दो रति करं॥ भौन॥
शैल बत्तीस इक सहस जोजन कहे।
चार सोलै मिलैं सर्व बावन लहे।
एक इक सीस पर एक जिन मन्दिरं॥ भौन॥
बिम्ब अठ एक सौ रतनमयी सोहही।
देव-देवी सरब नयन मन मोहही।
पाँच सौ धनुष तन पद्म आसन परं॥ भौन॥
लाल नख मुख नयन श्याम अरु श्वेत हैं।
श्याम रङ्ग भोंह सिरकेश छवि देत हैं॥
वचन बोलत मनों हँसत कालुष हरं॥ भौन॥
कोटि शशि-भान दुति तेज छिप जात है।
महा वैराग परिणाम ठहरात है॥
वयन नहिं कहैं लखि होत, सम्यक् धरं॥ भौन॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिशि द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिन प्रतिमाभ्यो जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

नन्दीश्वर जिनधाम, प्रतिमा महिमा को कहै।
'द्यानत' लीनो नाम, यही भगति शिवसुख करै॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

श्रीसोलहकारण पूजन

(अडिल्ल)

सोलह कारण भाय तीर्थङ्कर जे भये।
हरषे इन्द्र अपार मेरु पै ले गये॥
पूजा करि निज धन्य लख्यो बहु चाव सौं।
हमहूँ षोडश कारन भावैं भाव सौं॥

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्धयादिषोडकारणानि! अत्र अवतर, अवतर, संवौषट् इति आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्धयादिषोडकारणानि! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्धयादिषोडकारणानि! अत्र मम सन्निहितो, भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(चौपाई)

कंचन-झारी निरमल नीर, पूजों जिनवर गुण-गम्भीर।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।
दरशविशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थङ्कर-पद-पाय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्धि-विनयसम्पन्नता-शीलव्रतेष्वनतिचाराभीक्ष्णज्ञानोपयोग-संवेग-शक्तिस्त्याग-तपः-साधुसमाधि-वैयावृत्त्यकरणार्हद्भक्ति-आचार्यभक्ति-बहुश्रुतभक्ति-प्रवचनभक्ति-आवश्कापरिहाणि-मार्गप्रभावना-प्रवचनवात्सल्येति तीर्थङ्करत्वकारणेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन घसौं कपूर मिलाय, पूजौं श्री जिनवर के पाय।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥ दरश. ॥

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्धयादिषोड़शकारणेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि० स्वाहा

तन्दुल धवल सुगन्ध अनूप, पूजौं जिनवर तिहुँ जगभूप।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥ दरश. ॥

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्धयादिषोड़शकारणेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्व० स्वाहा।

फूल सुगन्ध मधुप गुंजार, पूजौं जिनवर जग-आधार।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥ दरश. ॥
ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्धयादिषोड़शकारणेभ्य: कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्व० स्वाहा।

सद नेवज बहुविधि पकवान, पूजौं श्री जिनवर गुणखान।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥ दरश. ॥
ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्धयादिषोड़शकारणेभ्य: क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व० स्वाहा।

दीपक-ज्योतितिमिर क्षयकार, पूजूँ श्रीजिन केवलधार।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥ दरश. ॥
ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्धयादिषोड़शकारणेभ्य: मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि० स्वाहा।

अगर कपूर गन्ध शुभ खेय, श्री जिनवर आगे महकेय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥ दरश. ॥
ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्धयादिषोड़शकारणेभ्य: अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्व० स्वाहा।

श्री फल आदि बहुत फलसार, पूजौं जिन वांछित-दातार।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥ दरश. ॥
ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्धयादिषोड़शकारणेभ्य: मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्व० स्वाहा।

जलफल आठों दरब चढ़ाय, द्यानत वरतकरो मनलाय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥ दरश. ॥
ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्धयादिषोड़शकारणेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व० स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

षोड़श कारण गुण करै, हरै चतुरगति-वास।
पाप-पुण्य सब नाश के, ज्ञान-भान परकाश॥

(चौपाई)

दरशविशुद्धि धरे, जो कोई, ताको आवागमन न होई।
विनय महाधारै जो प्राणी, शिव-वनिता की सखी बखानी॥

शील सदा दृढ़ हो नर पालै, सो औरन की आपद टालै।
ज्ञानाभ्यास करै मनमाहीं, ताके मोह-महातम नाहीं॥

जो संवेग-भाव विस्तारै, सुरग-मुकति-पद आप निहारै।
दान देय मन हरष विशेखै, इह भव जस पर-भव सुख देखै॥

जो तप तपै खपे अभिलाषा, चूरे करम-शिखर गुरु भाषा।
साधुसमाधि सदा मन लावै, तिहुँ जग भोग भोगि शिव जावै॥

निश-दिन वैयावृत्त्य करैया, सो निहचै भव-नीर तिरैया।
जो अरहन्त भगति मन आनै, सो जन विषय-कषाय न जाने॥

जो आचारज-भगति करै है, सो निरमल आचार धरै है।
बहुश्रुतवन्त-भगति जो करई, सो नर संपूरण श्रुत धरई॥

प्रवचन-भगति करै जो ज्ञाता, लहै ज्ञान-परमानन्द-दाता।
षट् आवश्यक नित जो साधै, सो ही रत्नत्रय आराधै॥

धरम-प्रभाव करै जे ज्ञानी, तिन शिव-मारग रीति पिछानी।
वत्सल अङ्ग सदा जो ध्यावै, सो तीर्थङ्कर पदवी पावै॥

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्धयादिषोड़शकारणेभ्यो जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

एही सोलह भाावना, सहित धरै व्रत जोय।
देव-इन्द्र-नर-वंद्य-पद, 'द्यानत' शिव-पद होय॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

श्रीदशलक्षणधर्म पूजन

(अनुष्टुप)

उत्तमक्षमान्तिकाद्यन्त-ब्रह्मचर्य-सुलक्षणम्।
स्थापय दशधा धर्ममुत्तमं जिनभाषितम्॥

(अडिल्ल स्थापना)

उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव भाव हैं,
सत्य शौच संयम तप त्याग उपाव हैं।
आकिञ्चन ब्रह्मचर्य धरम दश सार हैं,
चहुँगति-दुखतैं काढ़ि मुकति करतार हैं॥

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म! अत्र अवतर, अवतर, संवौषट् इति आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म! अत्र मम सन्निहितो, भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(सोरठा)

हेमाचल की धार, मुनि-चित्त सम शीतल सुरभि।
भव-आताप निवार, दस लच्छन पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दववार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्येतिदश-लक्षणधर्माय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन केशर गार, होय सुवास दशों दिशा।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अमल अखण्डितसार, तन्दुल चन्द्र समान शुभ।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

फूल अनेक प्रकार, महकें ऊरध-लोक लों।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज विविध निहार, उत्तम षट्-रस संजुगत।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बाति कपूर सुधार, दीपक-ज्योति सुहावनी।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अगर धूप विस्तार, फैले सर्व सुगन्धता।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल की जाति अपार, घ्रान-नयन-मन-मोहने।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आठों दरबसँवार, द्यानत अधिक उछाह सौं।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अङ्गपूजा

(सोरठा)

पीड़ैं दुष्ट अनेक, बाँध मार बहुविधि करैं।
धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजै पीतमा॥

उत्तम छिमा गहो रे भाई, इह-भव जस पर भव सुखदाई।
गालीसुनि मनखेद न आनो, गुन को औगुन कहै अयानो॥
कहि हैं अयानो वस्तु छीनै, बाँध मार बहुविधि करै।
घर तैं निकारै तन विदारै, वैर जो न तहाँ धरै॥

जे करम पूरब किये खोटे, सहै क्यों नहिं जीयरा।
अति क्रोध-अगनि बुझाय प्रानी, साम्य-जल ले सीयरा॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मान महाविषरूप, करहि नीच-गति जगत में।
कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्रानी सदा॥

उत्तम मार्दव गुन मन माना, मान करन कौ कौन ठिकाना।
बस्यो निगोद माहिं तैं आया, दमरी रूँकन भाग बिकाया॥
रूँकन बिकाया भाग वशतैं, देव इक-इन्द्री भया।
उत्तम मुआ चाण्डाल हुवा, भूप कीड़ों में गया॥
जीतव्य जोवन धन गुमान, कहा करैं जल-बुदबुदा।
करि विनय बहु-गुन बड़े जन की, ज्ञान का पावै उदा॥
ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कपट न कीजै कोय, चोरन के पुर ना बसै।
सरल सुभावी होय, ताके घर बहु सम्पदा॥

उत्तम आर्जव रीति बखानी, रंचक दगा बहुत दु:खदानी।
मन में होय सो वचन उचरिये, वचनहोय सो तनसौं करिये॥
करिये सरल तिहुँ जोग अपने देख निरमल आरसी।
मुख करै जैसा लखै तैसा, कपट-प्रीति अँगारसी॥
नहिं लहै लछमी अधिक छल करि, करम-बन्ध विशेषता।
भय त्यागि दूध बिलाव पीवै, आपदा नहिं देखता॥
ॐ ह्रीं उत्तमआर्जवधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कठिन वचन मति बोल, परनिन्दा अरु झूठ तज।
साँच जवाहर खोल, सतवादी जग में सुखी॥

उत्तम सत्य-बरत पालीजै, पर-विश्वासघात नहिं कीजै।
साँचे-झूठे मानुष देखो, आपन पूत स्वपास न पेखो॥
पेखो तिहायत पुरुष साँचे को दरब सब दीजिये।
मुनिराज-श्रावक की प्रतिष्ठा साँच गुण लख लीजिये॥
ऊँचे सिंहासन बैठि वसु नृप, धरम का भूपति भया।
वच झूठ सेती नरक पहुँचा, सुरग में नारद गया॥

ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

धरि हिरदै सन्तोष, करहु तपस्या देह सों।
शौच सदा निर्दोष, धरम बड़ो संसार में॥

उत्तम शौच सर्व जग जाना, लोभ पाप को बाप बखाना।
आशा-पास महा दु:खदानी, सुख पावै संतोषी प्रानी॥
प्रानी सदा शुचि शील जप तप, ज्ञान ध्यान प्रभावतैं।
नित गंग जमुन समुद्र न्हाये, अशुचि-दोष स्वभावतैं॥
ऊपर अमल मल भर्यो, भीतर, कौन विधि घट शुचि कहै।
बहु देह मैली सुगुन-थैली, शौच-गुन साधु लहे॥

ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

काय छहों प्रतिपाल, पञ्चेन्द्रिय मन वश करो।
संजम-रतन सम्भाल, विषय-चोर बहु फिरत हैं॥

उत्तम संजम गहु मन मेरे, भव-भव के भाजैं अघ तेरे।
सुरग-नरक -पशुगति में नाहीं, आलस-हरन करन सुख ठाहीं॥
ठाहीं पृथी जल आग मारुत, रूख त्रस करुना धरो।
सपरसन रसना घ्रान नैना, कान मन सब वश करो॥

जिस बिना नहिं जिनराज सीझे, तू रूल्यो जग-कीच में।
इक घरी मत विसरो करो नित, आव जम-मुख बीच में॥
ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तप चाहैं सुरराय, करम-शिखर को वज्र है।
द्वादशविधि सुखदाय, क्यों न करै निज सकति-सम॥

उत्तम तप सब माँहि बखाना, करम शैल को व्रज समाना।
बस्यो अनादि निगोद मँझारा, भू विकलत्रय पशु तन धारा॥
धारा मनुष तन महादुर्लभ, सुकुल आयु निरोगता।
श्री जैनवानी तत्त्वज्ञानी, भई विषयोपयोगता॥
अति महादुरलभ त्याग विषय-कषाय जो तप आदरैं।
नर-भव अनूपम कनक घर पर, मणिमयी कलसा धरैं॥
ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दान चार परकार, चार संघ को दीजिए।
धनु बिजुली उनहार, नर-भव लाहो लीजिए॥

उत्तम त्याग कह्यो जग सारा, औषध शास्त्र अभय आहारा।
निहचै राग-द्वेष निरवारै, ज्ञाता दोनों दान सँभारै॥
दोनों सँभारे कूप-जल सम, दरब घर में परिनया।
निज हाथ दीजे साथ लीजे, खाय खोया बह गया॥
धनि साधु शास्त्र अभय दिवैया, त्याग राग विरोध को।
बिन दान श्रावक साधु दोनों, लहैं नाहीं बोध को॥
ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परिग्रह चौबीस भेद, त्याग करैं मुनिराजजी।
तिसना भाव उछेद, घटती जान घटाइए॥

उत्तम आकिञ्चनगुण जानो, परिग्रहचिन्ता दुःख ही मानो।
फाँस तनक-सी तन में सालै, चाह लँगोटी की दुःख भालैं॥
भालैं न समता सुख कभी नर, बिना मुनि-मुद्रा धरै।
निज हाथ दीजे साथ लीजे, खाय खोया बह गया॥
घर माहिं तिसना जो घटावै, रुचि नहीं संसार सौं।
बहु धन बुरा हूँ भला कहिये, लीन पर उपगार सौं॥

ॐ ह्रीं उत्तमआकिञ्चन्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शील-बाढ़ नौ राख, ब्रह्म-भाव अन्तर लखो।
करि दोनों अभिलाख, करहु सफल नर-भव सदा॥
उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनौ, माता बहिन सुता पहिचानौ।
सहैं बान-वरषा बहु सूरे, टिकै न नैन-बान लखि कूरे॥
कूरे तिया के अशुचि तन में, काम-रोगी रति करैं।
बहु मृतक सड़हि मसान माहीं, काग ज्यों चोंचैं भरैं॥
संसार में विष-बेल नारी, तजि गये जोगीश्वरा।
'द्यानत' धरम दश पैड़ि चढ़ि कैं, शिव-महल में पग धरा॥

ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय जयमाला

(दोहा)

दश लच्छन वन्दौं सदा, मनवांछित फलदाय।
कहों आरती भारती, हम पर होहु सहाय॥

(चौपाई)

उत्तम छिमा जहाँ मन होई, अन्तर-बाहिर शत्रु न कोई।
उत्तम मार्दव विनय प्रकासै, नाना भेदज्ञान सब भासै॥

उत्तम आर्जव कपट मिटावै, दुरगति त्यागि सुगति उपजावै।
उत्तम सत्य-वचन मुख बोलै, सो प्रानी संसार न डोलै॥
उत्तम शौच लोभ-परिहारी, सन्तोषी गुण-रतन भण्डारी।
उत्तम संयम पालै ज्ञाता, नर-भव सफल करै ले साता॥
उत्तम तप निर्वांछित पालै, सो नर करम-शत्रु को टालै।
उत्तम त्याग करै जो कोई, भोगभूमि सुर-शिवसुख होई॥
उत्तम आंकिचन व्रत धारै, परम समाधि दशा विसतारै।
उत्तम ब्रह्मचर्य मन लावै, नर-सुर सहित मुकति-फल पावै॥

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्येति दशलक्षणधर्माय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

करै करम की निरजरा, भव पींजरा विनाशि।
अजर अमर पद को लहैं, 'द्यानत' सुख की राशि॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

रत्नत्रयधर्म पूजन

(पं. द्यानतरायजी कृत)

(दोहा)

चहुँगति-फनि-विष-हरन-मणि, दु:ख-पावक-जल-धार।
शिव-सुख-सुधा-सरोवरी, सम्यक्-त्रयी निहार॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक्रत्नत्रयधर्म! अत्र अवतर, अवतर, संवौषट् इति आह्वाननम्। ॐ ह्रीं श्रीसम्यक्रत्नत्रयधर्म! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठ: ठ: इति स्थापनम्। ॐ ह्रीं श्रीसम्यक्रत्नत्रयधर्म! अत्र मम सन्निहितो, भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(अष्टक सोरठा)

क्षीरोदधि उनहार, उज्ज्वल जल अति सोहनो।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन केशर गारि, परिमल-महा-सुगन्ध-मय।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

तन्दुल अमल चितार, वासमती-सुखदास के।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

महकैं फूल अपार, अलि गुंजैं ज्यों थुति करैं।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

लाडू बहु विस्तार, चीकन मिष्ट सुगन्ध-युक्त।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप-रतनमय सार, जोत प्रकाशै जगत में।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ॥
ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप सुवास विथार, चन्दन अगर कपूर की।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ॥
ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल शोभा अधिकार, लोंग छुहारे जायफल।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ॥
ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आठ दरब निरधार, उत्तम सो उत्तम लिये।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ॥
ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यग्दर्शनपूजन

(दोहा)

सिद्ध अष्ट-गुनमय प्रगट, मुक्त-जीव-सोपान।
ज्ञान चरित जिहँ बिन अफल, सम्यकदर्श प्रधान॥
ॐ ह्रीं श्री अष्टांग सम्यग्दर्शन! अत्र अवतर, अवतर, संवौषट् इति आह्वाननम्
ॐ ह्रीं श्री अष्टांग सम्यग्दर्शन! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री अष्टांग सम्यग्दर्शन! अत्र मम सन्निहितो, भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(सोरठा)

नीर सुगन्ध अपार, तृषा हरै मल छय करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा॥
ॐ ह्रीं श्री अष्टांग सम्यग्दर्शनाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल केशर घनसार, ताप हरै शीतल करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टांग सम्यग्दर्शनाय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टांग सम्यग्दर्शनाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टांग सम्यग्दर्शनाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज विविध प्रकार, क्षुधा हरै थिरता करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टांग सम्यग्दर्शनाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप-ज्योति तम हार, घट-पट परकाशै महा।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टांग सम्यग्दर्शनाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप घ्रान-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टांग सम्यग्दर्शनाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल आदि विथार, निहचैं सुर-शिव-फल करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टांग सम्यग्दर्शनाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गन्धाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टांग सम्यग्दर्शनाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

आप आप निहचै लखैं, तत्त्व-प्रीति व्यवहार।
रहित दोष पच्चीस हैं, सहित अष्ट गुन सार॥

(चौपाई मिश्रित गीता)

सम्यग्दरशन-रतन गहीजे, जिन-वच में संदेह न कीजै।
इह-भव-विभव-चाह दु:खदानी, पर-भव भोग चहै मत प्रानी॥
प्रानी गिलान न करि अशुचि लखि, धरम गुरु प्रभु परखिये।
पर-दोष ढकिये धरम डिगते, को सुथिर कर हरखिये॥
चहुँ संघ को वात्सल्य कीजै, धरम की प्रभावना।
गुन आठसों गुन आठ लहिकैं, इहाँ फेर न आवना॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टांगसहितपंचविंशतिदोषरहितसम्यग्दर्शनाय जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यग्ज्ञान पूजन

(दोहा)

पंच भेद जाके प्रकट, ज्ञेय-प्रकाशन भान।
मोह-तपन-हर-चन्द्रमा, सोई सम्यग्ज्ञान॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टाविधसम्यग्ज्ञान! अत्र अवतर, अवतर, संवौषट् इति आह्वाननम्
ॐ ह्रीं श्री अष्टाविधसम्यग्ज्ञान! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री अष्टाविधसम्यग्ज्ञान! अत्र मम सन्निहितो, भव भव वषट् इति सन्निधिकरणं।

(सोरठा)

नीर सुगन्ध अपार, तृषा हरै मल छय करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं श्रीअष्टाविधसम्यग्ज्ञानाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल केशर घनसार, ताप हरै शीतल करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥
ॐ ह्रीं श्रीअष्टाविधसम्यग्ज्ञानाय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥
ॐ ह्रीं श्रीअष्टाविधसम्यग्ज्ञानाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥
ॐ ह्रीं श्रीअष्टाविधसम्यग्ज्ञानाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज विविध प्रकार, क्षुधा हरै थिरता करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥
ॐ ह्रीं श्रीअष्टाविधसम्यग्ज्ञानाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप-ज्योति तम हार, घट-पट परकाशै महा।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥
ॐ ह्रीं श्रीअष्टाविधसम्यग्ज्ञानाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप घ्रान-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥
ॐ ह्रीं श्रीअष्टाविधसम्यग्ज्ञानाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल आदि विथार, निहचैं सुर-शिव-फल करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥
ॐ ह्रीं श्रीअष्टाविधसम्यग्ज्ञानाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गन्धाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥
ॐ ह्रीं श्रीअष्टाविधसम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

आप आप जानैं नियत, ग्रन्थ-पठन व्यवहार।
संशय-विभ्रम-मोह बिन, अष्ट अंग गुनकार॥

(चौपाई मिश्रित गीता)

सम्यग्ज्ञान-रतन मन भाया, आगम तीजा नैन बताया।
अच्छर शुद्ध अर्थ पहिचानो, अक्षर अरथ उभय संग जानो।
जानो सुकाल-पठन जिनागम, नाम गुरु न छिपाइए।
तप रीति गहि बहु मान देकैं, विनय-गुन चित लाइए॥
ये आठ भेद करम उछेदक, ज्ञान-दर्पन देखना।
इस ज्ञान ही सों भरत सीझा, और सब पट पेखना॥

ॐ ह्रीं श्रीअष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निवपामीति स्वाहा।

सम्यक्चारित्र पूजन

(दोहा)

विषय-रोग औषध महा, दव-कषाय-जल-धार।
तीर्थंकर जाको धरै, सम्यक्चारित सार॥

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविध-सम्यक्चारित्र! अत्र अवतर, अवतर, संवौषट् इति आह्वाननम्
ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविध-सम्यक्चारित्र! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविध-सम्यक्चारित्र! अत्र मम सन्निहितो, भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(सोरठा)

नीर सुगन्ध अपार, तृषा हरै मल छय करै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विधि पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल केशर घनसार, ताप हरै शीतल करै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विधि पूजौं सदा॥
ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विधि पूजौं सदा॥
ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विधि पूजौं सदा॥
ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज विविध प्रकार, क्षुधा हरै थिरता करै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विधि पूजौं सदा॥
ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप-ज्योति तम हार, घट-पट परकाशै महा।
सम्यक्चारित सार, तेरह विधि पूजौं सदा॥
ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप घ्रान-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विधि पूजौं सदा॥
ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल आदि विथार, निहचैं सुर-शिव-फल करै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विधि पूजौं सदा॥
ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गन्धाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यक्चारित सार, तेरह विधि पूजौं सदा॥
ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

आप आप थिर नियत नय, तप संयम व्यवहार।
स्व-पर-दया दोनों लिये, तेरहविध दुःखहार॥

(चौपाई मिश्रित गीता)

सम्यक्चारित्र-रतन सँभालौ, पाँच पाप तजि के व्रत पालौ।
पंच समिति त्रय गुप्ति गहीजै, नर-भव सफल करहु तन छीजै॥
छीजै सदा तन को जतन यह, एक संजम पालिए।
बहु रुल्यो नरक-निगोदमाहीं, विषय-कषायनि टालिए॥
शुभ-करम जोग सुघाट आया, पार हो दिन जात है।
'द्यानत' धरम की नाव बैठो, शिवह पुरी कुशलात है॥

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय जयमाला

(दोहा)

सम्यग्दरशन-ज्ञान-व्रत, इन बिन मुक्ति न होय।
अन्ध पंगु अरु आलसी, जुदे जलैं दव लोय॥

(चौपाई)

जापै ध्यान सुथिर बन आवै, ताके करमबन्ध कट जावै।
तासों शिव-तिय प्रीति बढ़ावै, जो सम्यक्रत्नत्रय ध्यावै॥
ताकौ चहुँगति के दुःख नाहीं, सो न परे भवसागर माहीं।
जनम-जरा मृत दोष मिटावै, जो सम्यक्रत्नत्रय ध्यावै॥
सोई दशलच्छन को साधै, सो सोलहकारण आराधै।

सो परमातमपद उपजावै, जो सम्यक्रत्नत्रय ध्यावै।।
सोई शक्र-चक्रिपद लेई, तीनलोक के सुख विलसेई।
सो रागादिक भाव बहावै, जो सम्यक्रत्नत्रय ध्यावै॥
सोई लोकालोक निहारे, परमानन्ददशा विसतारे।
आप तिरै और न तिरवावै, जो सम्यक्रत्नत्रय ध्यावै॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्राय समुच्चय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

एक स्वरूप-प्रकाश-निज, वचन कह्यो नहिं जाय।
तीन भेद व्योहार सब, 'द्यानत' को सुखदाय॥

ॐ पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

श्री अरहंत छबि लखि हिरदै, आनन्द अनुपम छाया है।टेक. ॥
वीतराग मुद्रा हितकारी, आसन पद्म लगाया है।
दृष्टि नासिका अग्रधार मनु, ध्यान महान बढ़ाया है॥1॥

रुप सुधाकर अंजलि भरभर, पीवत अति सुख पाया है।
तारन-तरन जगत हितकारी, विरद शचीपति गाया है॥2॥

तुम मुख-चन्द्र नयन के मारग, हिरदै माहिं समाया है।
भ्रम तम दुःख आताप नस्यो सब, सुख सागर बढ़ि आया है॥3॥

प्रकटी उर सन्तोष चन्द्रिका, निज स्वरूप दर्शाया है।
धन्य-धन्य तुम छवि 'जिनेश्वर', देखत ही सुख पाया है॥4॥

क्षमावाणी पूजन

(पं. राजमलजी पवैया कृत)

(स्थापना)

(छन्द-तांटक)

क्षमावाणी का पर्व सुपावन देता जीवों को संदेश।
उत्तम क्षमाधर्म को धारो जो अतिभव्य जीव का वेश॥
मोह नींद से जागो चेतन अब त्यागो मिथ्याभिनिवेश।
द्रव्यदृष्टि बन निजस्वभाव से चलो शीघ्र सिद्धों के देश॥
क्षमा, मार्दव, आर्जव, संयम, शौच, सत्य को अपनाओ।
त्याग, तपस्या, आकिंचन, व्रत ब्रह्मचर्यमय हो जाओ॥
एक धर्म का सार यही है समतामय ही बन जाओ।
सब जीवों पर क्षमाभाव रख स्वयं क्षमामय हो जाओ॥
क्षमा धर्म की महिमा अनुपम क्षमा धर्म ही जग में सार।
तीन लोक में गूँज रही है क्षमावाणी की जयजयकार॥
ज्ञाता-दृष्टा हो समग्र को देखो उत्तम निर्मल भेष।
रागों से विरक्त हो जाओ रहे न दु:ख का किंचित् लेश।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमाधर्म! अत्र अवतर, अवतर, संवौषट् इति आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठ: ठ: इति स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो, भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

जीवादिक नव तत्त्वों का श्रद्धान यही सम्यक्त्व प्रथम।
इनका ज्ञान ज्ञान है, रागादिक का त्याग चरित्र परम॥
'संते पुव्वणिबद्धं जाणदि' वह अबंध का ज्ञाता है।
सम्यग्दृष्टि जीव आस्रव बंधरहित हो जाता है॥
उत्तम क्षमा धर्म उर धारूँ जन्म-मरण क्षय कर मानूँ।
परद्रव्यों से दृष्टि हटाऊँ निज स्वभाव को पहचानूँ॥1॥

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमाधर्मांगाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सप्त भयों से रहित निशंकित निजस्वभाव में सम्यग्दृष्टि।
मिथ्यात्वादिक भावों में जो रहता वह है मिथ्यादृष्टि॥
तीन मूढ़ता छह अनायतन तीन शल्य का नाम नहीं।
आठ दोष समकित के अरु आठों मद का कुछ काम नहीं॥
उत्तम क्षमा धर्म उर धारूँ जन्म मरण क्षय कर मानूँ।
परद्रव्यों से दृष्टि हटाऊँ निज स्वरूप को पहचानूँ॥

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमाधर्मांगाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अशुभ कर्म जाना कुशील शुभ को सुशील मानता अरे।
जो संसार बंध का कारण वो कुशील जानता न रे॥
कर्म फलों के प्रति जिनकी आकांक्षा उर में रही नहीं।
वह निकांक्षित सम्यग्दृष्टि भव की वांछा रही नहीं॥उत्तम॥

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमाधर्मांगाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

राग शुभाशुभ दोनों ही संसार भ्रमण का कारण हैं।
शुद्धभाव ही एकमात्र परमार्थ भवोदधि तारण हैं॥
वस्तु स्वभाव धर्म के प्रति जो लेश जुगुप्सा करे नहीं।
निर्विचिकित्सक जीव वही है निश्चय सम्यग्दृष्टि वही॥ उत्तम॥

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमाधर्मांगाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध आत्मा जो ध्याता वह पूर्ण शुद्धता पाता है।
जो अशुद्ध को ध्याता है वह ही अशुद्धता पाता है॥
पर भावों में जो न मूढ़ है दृष्टि यथार्थ सदा जिसकी।
वह अमूढ़दृष्टि का धारी सम्यग्दृष्टि सदा उसकी॥उत्तम॥

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमाधर्मांगाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

राग-द्वेष मोहादिक आस्रव ज्ञानी को होते न कभी।
ज्ञाता-दृष्टा को ही होते उत्तम संवर भाव सभी॥

शुद्धातम की भक्ति सहित जो पर भावों से नहीं जुड़ा।
उपगूहन का अधिकारी है सम्यग्दृष्टि महान बड़ा।।उत्तम॥

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमाधर्मांगाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म बन्ध के चारों कारण मिथ्या अविरति योग कषाय।
चेतयिता इनका छेदन कर, करता है निर्वाण उपाय।
जो उन्मार्ग छोड़कर निज को निज में सुस्थापित करता।
स्थितिकरण युक्त होता वह सम्यग्दृष्टी स्वहित करता।।उत्तम॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्य-पापमय सभी शुभाशुभ योगों से रहता वह दूर।
सर्व संग से रहित हुआ वह दर्शन ज्ञानमयी सुख पूर॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरितधारी के प्रति गौ वत्सल भाव।
वात्सल्य का धारी सम्यग्दृष्टि मिटाता पूर्ण विभाव।।उत्तम॥

ॐ ह्रीं श्रीउत्तम क्षमाधर्मांगाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानविहीन कभी भी पलभर ज्ञानस्वरूप नहीं होता।
बिना ज्ञान के ग्रहण किए कर्मों से मुक्त नहीं होता॥
विद्यारूपी रथ पर चढ़ जो ज्ञानरूप रथ चलवाता।
वह जिन शासन की प्रभावना करता शिवपथ दर्शाता।।उत्तम॥

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमाधर्मांगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

उत्तम क्षमा स्वधर्म को, वन्दन करूँ त्रिकाल।
नाश दोष पच्चीस कर, काटूँ भव जंजाल॥

(ताटंक)

सोलहकारण पुष्पांजलि दशलक्षण रत्नत्रय व्रत पूर्ण।
इनके सम्यक् पालन से हो जाते हैं वसुकर्म विचूर्ण॥
भाद्र मास में सोलहकारण तीस दिवस तक होते हैं।
शुक्ल पक्ष में दशलक्षण पंचम से दस दिन होते हैं॥
पुष्पांजलि दिन पाँच पंचमी से नवमी तक होते हैं।
पावन रत्नत्रयव्रत अन्तिम तीन दिवस के होते हैं॥
आश्विन कृष्णा एकम् उत्सव क्षमावाणी का होता है।
उत्तमक्षमा धार उर श्रावक मोक्षमार्ग को जोता है॥
भाद्र मास अरु माघ मास अरु चैत्र मास में आते हैं।
तीन बार आ पर्वराज जिनवर संदेश सुनाते हैं॥
'जीवे कम्मं बद्धं' पुट्ठ यह तो है व्यवहार कथन।
है अबद्ध अस्पृष्ट कर्म से निश्चय नय का यही कथन॥
जीव-देह को एक बताना यह है नय व्यवहार अरे।
जीव देह तो पृथक-पृथक हैं निश्चय नय कह रहा अरे॥
निश्चय नय का विषय छोड़ व्यवहार माँहि करते वर्तन।
उनको मोक्ष नहीं हो सकता और न ही सम्यग्दर्शन॥
'दोण्हविणयाण भणियं जाणई' जो पक्षातिक्रांत होता।
चित्स्वरूप का अनुभव करता सकलकर्म मल को खोता॥

ज्ञानी ज्ञानस्वरूप छोड़कर जब अज्ञान रूप होता।
तब अज्ञानी कहलाता है पुद्गल बन्ध रूप होता॥
'जह विस भुव भुज्जंतो वेज्जो' मरण नहीं पा सकता है।
ज्ञानी पुद्गल कर्म उदय को भोगे बन्ध न करता है॥

मुनि अथवा गृहस्थ कोई भी मोक्षमार्ग है कभी नहीं।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित ही मोक्षमार्ग है सही-सही॥
मुनि अथवा गृहस्थ के लिंगों में जो ममता करता है।
मोक्षमार्ग तो बहुत दूर भव-अटवी में ही भ्रमता है॥
प्रतिक्रमण प्रतिसरण आदि आठों प्रकार के विषकुम्भ।
इनसे जो विपरीत वही हे मोक्षमार्ग के अमृतकुम्भ॥
पुण्य भाव की भी तो इच्छा ज्ञानी कभी नहीं करता।
परभावों से अरति सदा है निज का ही कर्ता धर्ता॥
कोई कर्म किसी जीव को है सुख-दुख दाता नहीं समर्थ।
जीव स्वयं ही अपने सुख-दुख का निर्माता स्वयं समर्थ॥
क्रोध, मान, माया, लोभादिक नहीं जीव के किंचित् मात्र।
रूप, गंध, रस, स्पर्श शब्द भी नहीं जीव के किंचित् मात्र॥
देह संहनन संस्थान भी नहीं जीव के किंचित् मात्र।
राग-द्वेष-मोहादि भाव भी नहीं जीव के किंचित् मात्र॥
सर्वभाव से भिन्न त्रिकाली पूर्ण ज्ञानमय ज्ञायक मात्र।
नित्य, अनुभव रसपान किये बिन नहीं मोक्ष में जायेंगे॥
अनुभव ही तो शिवसमुद्र है अनुभव शाश्वत सुख का स्रोत।
अनुभव परमसत्य शिव सुन्दर अनुभव शिव से ओतप्रोत॥
निज स्वभाव के सन्मुख हो जा, पर से दृष्टि हटा भगवान।
पूर्ण सिद्धपर्याय प्रकट कर आज अभी पा ले निर्वाण॥
ज्ञान-चेतना सिंधु स्वयं तू स्वयं अनन्तगुणों का भूप।
त्रिभुवनपति सर्वज्ञ ज्योतिमय चिंतामणि चेतन चिद्रूप॥

यह उपदेश श्रवण कर हे प्रभु! मैत्री भाव हृदय धारूँ।
जो विपरीत वृत्तिवाले हैं उन पर में समता धारूँ॥
धीरे-धीरे पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ आस्रव संहारूँ।
भव-तन भोगों से विरक्त हो निजस्वभाव को स्वीकारूँ॥
दशधर्मों को पढ़ सुनकर अन्तर में आये परिवर्तन।
व्रत उपवास तपादिक द्वारा करूँ सदा ही निज चिंतन॥
राग-द्वेष अभिमान पाप हर काम क्रोध को चूर करूँ।
जो संकल्प-विकल्प उठे प्रभु उनको क्षण-क्षण दूर करूँ॥
अणु भर भी यदि राग रहेगा नहीं मोक्ष पद पाऊँगा।
तीन लोक में काल अनंता राग लिए भरमाऊँगा॥
राग शुभाशुभ के विनाश से वीतराग बन जाऊँगा।
शुद्धात्मानुभूति के द्वारा स्वयं सिद्ध पद पाऊँगा॥
पर्यूषण में दूषण त्यागूँ बाह्य क्रिया में रमे न मन।
शिव पथ का अनुसरण करूँ मैं के नाथ सिद्ध नन्दन॥
जीव मात्र पर क्षमा भाव रख मैं व्यवहार धर्म पालूँ।
निज शुद्धातम पर करुणा कर निश्चय धर्म सहज पालूँ॥

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमाधर्मांगाय जयमाला अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

मोक्ष-मार्ग दर्शा रहा, क्षमावाणी का पर्व।
क्षमाभाव धारण करो, राग-द्वेष हर सर्व॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

श्रीवीरशासन जयन्ती पूजन

(ताटंक)

वर्द्धमान अतिवीर वीर प्रभु सन्मति महावीर स्वामी।
वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर अन्तिम तीर्थङ्कर नामी॥
श्री अरहन्तदेव मङ्गलमय स्वपर प्रकाशक गुणधामी।
सकल लोक के ज्ञाता-दृष्टा महापूज्य अन्तर्यामी॥

महावीर शासन का पहला दिन श्रावण कृष्ण एकम।
शासन वीर जयन्ती आती है प्रतिबर्ष सुपावनतम॥
विपुलाचल पर्वत पर प्रभु के समवसरण में मङ्गलकार।
खिरी दिव्यध्वनि शासन वीर जयन्ती पर्व हुआ साकार।

प्रभु चरणाम्बुज पूजन करने का आया उर में शुभ भाव।
सम्यग्ज्ञान प्रकाश मुझे दो, राग-द्वेष का करूँ अभाव॥

ॐ ह्रीं श्रीसन्मतिवीरजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

भाग्यहीन नर रत्न स्वर्ण को जैसे प्राप्त नहीं करता।
ध्यानहीन मुनि निज आतम का त्यों अनुभवन नहीं करता॥
शासन वीर जयन्ती पर जल चढ़ा वीर का ध्यान करूँ।
खिरी दिव्यध्वनि प्रथम देशना सुन अपना कल्याण करूँ॥

ॐ ह्रीं श्रीसन्मतिवीरेजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

विविध कल्पना उठती मन में, वे विकल्प कहलाते हैं।
बाह्य पदार्थों में ममत्व मन के संकल्प रुलाते हैं॥
शासन वीरजयन्ती पर चन्दन अर्पित कर ध्यान करूँ॥ खिरी. ॥

ॐ ह्रीं श्रीसन्मतिवीरजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अन्तरङ्ग बहिरङ्ग परिग्रह त्यागूँ मैं निर्ग्रन्थ बनूँ।
जीवन मरण, मित्र अरि सुख-दुःख लाभ-हानि में साम्य बनूँ॥

शासन वीरजयन्ती पर, कर अक्षत भेंट स्वध्यान करूँ॥ खिरी. ॥
ॐ ह्रीं श्रीसन्मतिवीरेजिनेन्द्राय अक्षयप्रदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध सिद्ध ज्ञानादि गुणों से मैं समृद्ध हूँ देह प्रमाण।
नित्य असंख्यप्रदेशी निर्मल हूँ अमूर्तिक महिमावान॥
शासन वीर जयन्ती पर, कर भेंट पुष्प निज ध्यान करूँ॥ खिरी. ॥
ॐ ह्रीं श्रीसन्मतीवीरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

परम तेज हूँ परम ज्ञान हूँ परम पूर्ण हूँ बाह्य स्वरूप।
निरालम्ब हूँ निर्विकार हूँ, निश्चय से मैं परम अनूप॥
शासन वीरजयन्ती पर नैवेद्य चढ़ा निज ध्यान करूँ॥ खिरी. ॥
ॐ ह्रीं श्रीसन्मतीवीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वपर प्रकाशक केवलज्ञानमयी, निज मूर्ति अमूर्ति महान।
चिदानन्द टंकोत्कीर्ण हूँ ज्ञान ज्ञेय ज्ञाता भगवान॥
शासन वीरजयन्ती पर मैं दीप चढ़ा निज ध्यान करूँ॥ खिरी. ॥
ॐ ह्रीं श्रीसन्मतीवीरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादिक देहादिक नोकर्म विहीन।
भाव कर्म रागादिक से मैं पृथक् आत्मा ज्ञान प्रवीण॥
शासन वीरजयन्ती पर मैं धूप चढ़ा निजध्यान करूँ॥ खिरी. ॥
ॐ ह्रीं श्रीसन्मतीवीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म मल रहित शुद्ध ज्ञानमय, परममोक्ष है मेरा धाम।
भेदज्ञान की महाशक्ति से पाऊँगा अनन्त विश्राम॥
शासन वीरजयन्ती पर मैं सुफल चढ़ा निजध्यान करूँ॥ खिरी. ॥
ॐ ह्रीं श्रीसन्मतीवीरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

मात्र वासनाजन्य कल्पना है परद्रव्यों में सुख बुद्धि।
इन्द्रियजन्य सुखों के पीछे पायी किञ्चित नहीं विशुद्धि॥
शासन वीरजयन्ती पर मैं अर्घ्य चढ़ा निजध्यान करूँ॥ खिरी. ॥
ॐ ह्रीं श्रीसन्मतीवीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

विपुलाचल के गगन को, बन्दूँ बारम्बार।
सन्मति प्रभु की दिव्यध्वनि, जहाँ हुई साकार॥

(ताटंक)

महावीर प्रभु दीक्षा लेकर मौन हुए तप संयम धार।
परिषह उपसर्गों को जय कर देश-देश में किया विहार॥
द्वादश वर्ष तपस्या करके ऋजुकूला सरि तट आये।
क्षपकश्रेणी चढ़ शुक्लध्यान से कर्मघातिया विनशाये॥
स्व-पर प्रकाशक परम ज्योतिमय प्रभु को केवलज्ञान हुआ।
इन्द्रादिक को समवसरण रच मन में हर्ष महान हुआ।
बारह सभा जुड़ी अति सुन्दर, सबके मन का कमल खिला।
जनमानस को प्रभु की दिव्यध्वनि का, किन्तु न लाभ मिला॥
छ्यासठ दिन तक रहे मौन प्रभु, दिव्यध्वनि का मिला न योग।
अपने आप स्वयं मिला है, निमित्त-नैमित्तिक संयोग॥
राजगृही के विपुलाचल पर प्रभु का समवसरण आया।
अवधिज्ञान से जान इन्द्र ने गणधर का अभाव पाया॥
बड़ी युक्ति से इन्द्रभूति गौतम ब्राह्मण को लाया।
गौतम ने दीक्षा लेते ही ऋषि गणधर का पद पाया॥
तत्क्षण खिरी दिव्यध्वनि प्रभु की द्वादशांगमय कल्याणी।
रच डाली अन्तरमुहूर्त में, गौतम ने श्री जिनवाणी॥
सात शतक लघु और महाभाषा अष्टादश विविध प्रकार।
सब जीवों ने सुनी दिव्यध्वनि अपने उपादान अनुसार॥
विपुलाचल पर समवसरण का हुआ आज के दिन विस्तार।
प्रभु की पावन वाणी सुनकर गूँजी नभ में जय-जयकार॥

जन-जन में नव जागृति जागी मिटा जगत का हाहाकार।
जियो और जीने दो का जीवन सन्देश जीवन का साकार॥
धर्म अहिंसा सत्य और अस्तेय मनुज जीवन का सार।
ब्रह्मचर्य अपरिग्रह से ही होगा जीव मात्र से प्यार॥
घृणा पाप से करो सदा ही किन्तु नहीं पापी से द्वेष।
जीव मात्र को निज-सम समझो यही वीर का था उपदेश॥
इन्द्रभूति गौतम ने गणधर बनकर गूँथी जिनवाणी।
इसके द्वारा परमात्मा बन सकता कोई भी प्राणी॥
मेघ गर्जना करती श्री जिनवाणी का बह चला प्रवाह।
पाप ताप संताप नष्ट हो गये मोक्ष की जागी चाह॥
प्रथमं, करणं, चरणं, द्रव्यं ये अनुयोग बताये चार।
निश्चय नय सत्यार्थ बताया, असत्यार्थ सारा व्यवहार॥
तीन लोक षट् द्रव्यमयी है सात तत्त्व की श्रद्धा सार।
नव पदार्थ छह लेश्या जानो, पञ्च महाव्रत उत्तम धार॥
समिति गुप्ति चारित्र पालकर तप संयम धारो अविकार।
परम शुद्ध निज आत्मतत्त्व, आश्रय से हो जाओ भव पार॥
उस वाणी को मेरा वन्दन उसकी महिमा अपरम्पार।
सदा वीर शासन की पावन परम जयन्ती जय जयकार॥
वर्द्धमान अतिवीर वीर की पूजन का है हर्ष अपार।
काललब्धि प्रभु मेरी आयी शेष रहा थोड़ा संसार॥

ॐ ह्रीं श्रीसन्मतिवीरजिनेन्द्राय अनर्ध्यपद प्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

दिव्यध्वनि प्रभु वीर की, देती सौख्य अपार।
आत्मज्ञान की शक्ति से, खुले मोक्ष का द्वार॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

श्रीरक्षाबन्धन पर्व पूजन

(ताटंक)

जय अकम्पनाचार्य आदि सात सौ साधु मुनिव्रतधारी।
बलि ने कर नरमेध यज्ञ उपसर्ग किया भीषण भारी॥
जय जय विष्णुकुमार महामुनि ऋद्धि विक्रिया के धारी।
किया शीघ्र उपसर्ग निवारण वात्सल्य करुणाधारी॥
रक्षा-बन्धन पर्व मना मुनियों का जय-जय कार हुआ।
श्रावण शुक्ल पूर्णिमा के दिन घर-घर मङ्गलाचार हुआ॥
श्री मुनि चरण कमल मैं वन्दूँ पाऊँ प्रभु सम्यग्दर्शन।
भक्तिभाव से पूजन करके निज स्वरूप में रहूँ मगन॥

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनि! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

जन्म-मरण के नाश हेतु प्रासुक जल करता अर्पण।
राग-द्वेष परिणति अभावकर निज परिणति में करूँ रमण॥
श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि सप्तशतक को करूँ नमन।
मुनि उपसर्ग निवारक विष्णुकुमार महामुनि को वन्दन॥

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव-सन्ताप मिटाने को मैं चन्दन करता हूँ अर्पण।
देह भोग भव से विरक्त हो निजपरिणति में करूँ रमण॥ श्री॥

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो संसार ताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षयपद अखण्ड पाने को अक्षत धवल करूँ अर्पण।
हिंसादिक पापों को क्षय कर निजपरिणति में करूँ रमण॥ श्री॥

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कामबाण विध्वंस हेतु मैं सहज पुष्प करता अर्पण।
क्रोधादिक चारों कषाय हर निज परिणति में करूँ रमण॥ श्री॥
ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्य: कामवाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुधारोग के नाश हेतु नैवेद्य सरस करता अर्पण।
विषयभोग की आकांक्षा हर निजपरिणति में करूँ रमण॥ श्री॥
ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चिर मिथ्यात्व तिमिर हरने को दीपज्योति करता अर्पण।
सम्यग्दर्शन का प्रकाश पा निज परिणति में करूँ रमण॥ श्री॥
ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो मोहान्धकार विनाशनायदीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टकर्म के नाश हेतु यह धूप सुगन्धित है अर्पण।
सम्यग्ज्ञान हृदय प्रकटाऊँ निज परिणति में करूँ रमण॥ श्री॥
ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

मुक्ति प्राप्ति हेतु उत्तम फल चरणों में करता अर्पण।
मैं सम्यकचारित्र प्राप्त कर निज परिणति में करूँ रमण॥ श्री॥
ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार-अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शाश्वत पद अनर्घ्य पाने को उत्तम अर्घ्य करूँ अर्पण।
रत्नत्रय की तरण खेऊँ निज परिणति में करूँ रमण॥ श्री॥
ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्योऽस्वाहानर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि०

जयमाला

(दोहा)

वात्सल्य के अङ्ग की महिमा अपरम्पार।
विष्णुकुमार मुनीन्द्र की गूँजी जय-जयकार॥

(ताटंक)

उज्जयनी नगरी के नृप श्रीवर्मा के मन्त्री थे चार।
बलि, प्रहलाद, नमुचि वृहस्पति चारों अभिमानी सविकार॥

जब अकम्पनाचार्य संघ मुनियों का नगरी में आया।
सात शतक मुनि के दर्शन कर नृप श्रीवर्मा हर्षाया॥

सब मुनि मौन ध्यान में रत, लख बलि आदिक ने निन्दा की।
कहा कि मुनि सब मूर्ख, इसी से नहीं तत्त्व की चर्चा की॥

किन्तु लौटते समय मार्ग में, श्रुतसागर मुनि दिखलाये।
वाद-विवाद किया श्री मुनि से, हारे जीत नहीं पाये॥

अपमानित होकर निशि में मुनि पर प्रहार करने आये।
खडग उठाते ही कीलित हो गये हृदय में पछताये॥

प्रातः होते ही राजा ने आकर मुनि को किया नमन।
देश निकाला दिया मन्त्रियों को तब राजा ने तत्क्षण॥

चारों मन्त्री अपमानित हो पहुँचे नगर हस्तिनापुर।
राजा पद्मराय को अपनी सेवाओं से प्रसन्न कर॥

मुँह माँगा वरदान नृपति ने बलि को दिया तभी तत्पर।
जब चाहूँगा तब ले लूँगा, बलि ने कहा नम्र होकर॥

फिर अकम्पनाचार्य सात सौ मुनियों सहित नगर आये।
बलि के मन में मुनियों की हत्या के भाव उदय आये॥

कुटिल चाल चल बलि ने नृप से आठ दिवस का राज्य लिया।
भीषण अग्नि जलायी चारों ओर द्वेष से कार्य किया॥

हाहाकार मचा जगती में, मुनि स्व ध्यान में लीन हुए।
नश्वर देह भिन्न चेतन से, यह विचार निज लीन हुए॥

यह नरमेघ यज्ञ रच बलि ने, किया दान का ढोंग विचित्र।
दान किमिच्छक देता था, पर मन था अति हिंसक अपवित्र॥

पद्मराय नृप के लघु भाई, विष्णुकुमार महा मुनिवर।
वात्सल्य का भाव जगा, मुनियों पर संकट को सुनकर॥

किया गमन आकाश मार्ग में, शीघ्र हस्तिनापुर आये।
ऋद्धि विक्रिया द्वारा याचक, वामन रूप बना लाये॥

बलि से माँगी तीन पाँव भू, बलिराजा हँसकर बोला।
जितनी चाहो उतनी ले लो, वामन मूर्ख बड़ा भोला॥

हँसकर मुनि एक पाँच में ही सारी पृथ्वी नापी।
पग द्वितीय में मानुषोत्तर, पर्वत की सीमा नापी॥

ठौर न मिला तीसरे पग को, बलि के मस्तक पर रक्खा।
क्षमा क्षमा कह कर बलि ने, मुनिचरणों में मस्तक रक्खा॥

शीतल ज्वाला हुई अग्नि की, श्री मुनियों की रक्षा की।
जय-जयकार धर्म का गूँजा, वात्सल्य की शिक्षा दी॥

नवधा भक्तिपूर्वक सबने, मुनियों को आहार दिया।
बलि आदिक का हुआ हृदय परिवर्तन जय-जयकार किया॥

रक्षा सूत्र बाँधकर तब, जन-जन ने मङ्गलाचार किये।
साधर्मी वात्सल्य भाव से, आपस में व्यवहार किये॥

समकित के वात्सल्य अङ्ग की, महिमा प्रकटी इस जग में।
रक्षाबन्धन पर्व इसी दिन से, प्रारम्भ हुआ जग में॥

श्रावण शुक्ल पूर्णिमा का दिन था रक्षासूत्र बँधा कर में।
वात्सल्य की प्रभावना का आया अवसर घर-घर में॥

प्रायश्चित ले विष्णुमार ने पुनः व्रत ले तप ग्रहण किया।
अष्टकर्म बन्धन को हरकर, इस भव से ही मोक्ष लिया॥

सब मुनियों ने भी अपने-अपने परिणामों के अनुसार।
स्वर्ग-मोक्ष पद पाया जग में हुई धर्म की जय-जयकार॥

धर्म-भावना रहे हृदय में, पापों के प्रतिकूल चलूँ।
रहे शुद्ध आचरण सदा ही, धर्म-मार्ग अनुकूल चलूँ॥

आत्मज्ञान रुचि जगे हृदय में, निज पर को मैं पहिचानूँ।
समकित के आठों अङ्गों की, पावन महिमा को जानूँ॥

तभी सार्थक जीवन होगा, सार्थक होगी यह नर देह।
अन्तर घट में जब बरसेगा, पावन परम ज्ञान रस मेह॥

पर से मोह नहीं होगा, होगा निजात्म से अति नेह।
तब पायेंगे अखण्ड अविनाशी निजसुखमय शिवगेह॥

रक्षा-बन्धन पर्व धर्म का, रक्षा का त्यौहार महान।
रक्षा-बन्धन पर्व ज्ञान का, रक्षा का त्यौहार प्रधान॥

रक्षा-बन्धन पर्व चरित का, रक्षा का त्यौहार महान।
रक्षा-बन्धन पर्व आत्म का, रक्षा का त्यौहार प्रधान॥

श्री अकम्पानाचार्य आदि मुनि सात शतक को करूँ नमन।
मुनि उपसर्ग निवारक विष्णुकुमार महामुनि को वन्दन॥

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमार अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो जयमालापूर्णार्घ्यं नि० स्वाहा।

रक्षाबन्धन पर्व पर, श्री मुनि पद उर धार।
मन-वच-तन जो पूजते, पाते सौख्य अपार॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

श्रीदीपमालिका पर्व पूजन

(ताटंक)

महावीर निर्वाण दिवस पर, महावीर पूजन कर लूँ।
वर्द्धमान अतिवीर वीर, सन्मति प्रभु को वन्दन कर लूँ॥
पावापुर से मोक्ष गये प्रभु, जिनवर पद अर्चन कर लूँ।
जगमग-जगमग दिव्यज्योति से, धन्य मनुजजीवन कर लूँ॥
कार्तिक कृष्ण आमावस्या को, शुद्धभाव मन में भर लूँ।
दीपमालिका पर्व मनाऊँ, भव-भव के बन्धन हर लूँ॥
ज्ञान-सूर्य का चिर-प्रकाश ले, रत्नत्रय पथ पर बढ़ लूँ।
परभावों का राग तोड़कर, निजस्वभाव में मैं अड़ लूँ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमङ्गलप्राप्तश्रीवर्द्धमानजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

चिदानन्द चैतन्य अनाकुल, निज स्वभावमय जल भर लूँ।
जन्म-मरण का चक्र मिटाऊँ, भव-भव की पीड़ा हर लूँ॥
दीपावलि के पुण्य दिवस पर, वर्द्धमान पूजन कर लूँ।
महावीर अतिवीर वीर, सन्मति प्रभु को वन्दन कर लूँ॥

ॐ ह्रीं कार्तिकृष्णामावस्यायां मोक्षमङ्गलप्राप्ताय श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

अमल अखण्ड अतुल अविनाशी, निज चन्दन उर में धर लूँ।
चारों गति का ताप मिटाऊँ, निज पंचमगति आदर लूँ॥ दीपा. ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमङ्गलप्राप्ताय श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अजर अमर अक्षय, अविकल, अनुपम अक्षतपद उर धर लूँ।
भवसागर तर मुक्तिवधू से, मैं पावन परिणय कर लूँ॥ दीपा. ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमङ्गलप्राप्ताय श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय अक्षयप्रदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

रूप–गन्ध–रस–स्पर्श रहित निज शुद्ध पुष्प मन में भर लूँ।
कामबाण की व्यथा नाशकर, मैं निष्काम रूप धर लूँ॥ दीपा. ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमङ्गलप्राप्ताय श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्मशक्ति परिपूर्ण शुद्ध, नैवेद्य भाव उर में धर लूँ।
चिर–अतृप्ति का रोग नाशकर, सहजतृप्त निजपद वर लूँ॥ दीपा. ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमङ्गलप्राप्ताय श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूर्ण ज्ञान कैवल्य प्राप्ति हित, ज्ञानदीप ज्योतित कर लूँ।
मिथ्याभ्रम–तप–मोह नाशकर, निजसम्यक्त्व प्राप्त कर लूँ॥ दीपा. ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमङ्गलप्राप्ताय श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्यभाव की धूप जलाकर, घाति–अघाति कर्म हर लूँ।
क्रोध–मान–माया–लोभादि , मोहद्रोह सब क्षय कर लूँ॥ दीपा. ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमङ्गलप्राप्ताय श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अमिट अनन्त अचल अविनश्वर, श्रेष्ठ मोक्षपद उर धर लूँ।
अष्टस्वगुण से युक्त सिद्धगति पा, सिद्धत्व प्राप्त कर लूँ॥ दीपा. ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमङ्गलप्राप्ताय श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

गुण अनन्त प्रकटाऊँ, अपने, निज अनर्घ्य पद को वर लूँ।
शुद्धस्वामी ज्ञान–प्रभावी, निज सौन्दर्य प्रकट कर लूँ॥ दीपा. ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमङ्गलप्राप्ताय श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

शुभ आषाढ़ शुक्ल षष्ठी को पुष्पोत्तर तज प्रभु आये।
माता त्रिशला धन्य हो गई, सोलह सपने दरशाये॥
पन्द्रह मास रत्न बरसे, कुण्डलपुर में आनन्द हुआ।
वर्द्धमान के गर्भोत्सव पर, दूर शोक-दुःख-द्वन्द्व हुआ॥

ॐ ह्रीं आषाढशुक्लषष्ठ्यां गर्भमङ्गलप्राप्ताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।

चैत्र शुक्ल की त्रयोदशी को, सारी जगती धन्य हुई।
नृप सिद्धार्थराज हर्षाये, कुण्डलपुरी अनन्य हुई॥
मेरु सुदर्शन पाण्डुक वन में, सुरपति ने कर प्रभु अभिषेक।
नृत्य वाद्य मङ्गल गीतों के, द्वारा किया हर्ष अतिरेक॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममङ्गलप्राप्ताय श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।

मगसिर कृष्णा दशमी को, उर में छाया वैराग्य अपार।
लौकान्तिक देवों के द्वारा धन्य-धन्य प्रभु जय-जयकार॥
बाल ब्रह्मचारी गुणधारी, वीर प्रभु ने किया प्रयाण।
वन में जाकर दीक्षाधारी, निज में लीन हुए भगवान॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोमङ्गलप्राप्ताय श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।

द्वादश वर्ष तपस्या करके, पाया तुमने केवलज्ञान।
कर वैसाख शुक्ल दशमी को, त्रेसठ कर्म प्रकृति अवसान॥
सर्व द्रव्य-गुण-पर्यायों को, युगपत् एक समय में जान॥
वर्द्धमान सर्वज्ञ हुए प्रभु, वीतराग अरिहन्त महान॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानमङ्गलमण्डिताय श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।

कार्तिक कृष्ण अमावस्या को, वर्धमान प्रभु मुक्त हुए।
सादि-अनन्त समाधि प्राप्त कर, मुक्ति-रमा से युक्त हुए॥
अन्तिम शुक्लध्यान के द्वारा, कर अघातिया का अवसान।
शेष प्रकृति पच्यासी को भी, क्षय करके पाया निर्वाण॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णावस्यायां मोक्षमङ्गलमण्डिताय श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।

जयमाला

महावीर ने पावापुर से, मोक्षलक्ष्मी पाई थी।
इन्द्र-सुरों ने हर्षित होकर, दीपावली मनाई थी॥
केवलज्ञान प्राप्त होने पर, तीस वर्ष तक किया विहार।
कोटि-कोटि जीवों का प्रभु ने, दे उपदेश किया उपकार॥
पावापुर उद्यान पधारे, योगनिरोध किया साकार।
गुणस्थान चौदह को तजकर, पहुँचे भवसमुद्र के पार॥
सिद्धशिला पर हुए विराजित, मिली मोक्षलक्ष्मी सुखकार।
जल-थल-नभ में देवों द्वारा गूँज उठी प्रभु की जयकार॥
इन्द्रादिक सुर हर्षित आये, मन में धारे मोद अपार।
महामोक्ष कल्याण मनाया, अखिल विश्व को मङ्गलकार॥
अष्टादश गणराज्यों के, राजाओं ने जयगान किया।
नत-मस्तक होकर जन-जन ने, महावीर गुणगान किया॥
तन कपूरवत् उड़ा शेष नख, केश रहे इस भूतल पर।
मायामयी शरीर रचा, देवों ने क्षण भर के भीतर॥
अग्निकुमार सुरों ने झुक, मुकुटानल से तन भस्म किया।
सर्व उपस्थित जनसमूह, सुरगण ने पुण्य अपार लिया॥
कार्तिक कृष्ण आमावस्या का, दिवस मनोहर सुखकर था।
उषाकाल का उजियारा कुछ, तम-मिश्रित अति मनहर था॥
रत्न ज्योतियों का प्रकाश कर, देवों ने मङ्गल गाये।
रत्न-दीप की आवलियों से, पर्व दीपमाला लाये॥
सब ने शीश चढ़ाई भस्मी, पद्म सरोवर बना वहाँ।
वही भूमि है अनुपम सुन्दर, जल मन्दिर है बना वहाँ।
प्रभु के ग्यारह गणधर में थे, प्रमुख श्री गौतम स्वामी।

क्षपकश्रेणि चढ़ शुक्लध्यान से, हुए देव अन्तर्यामी॥
इसी दिवस गौतम स्वामी को, सन्ध्या केवलज्ञान हुआ।
केवलज्ञान लक्ष्मी पायी, पद सर्वज्ञ महान हुआ॥
देवों ने अति हर्षित होकर, रत्न-ज्योति का किया प्रकाश।
हुई दीपमाला द्विगुणित, आनन्द हुआ छाया उल्लास॥
प्रभु के चरणाम्बुज दर्शन कर, हो जाता मन अतिपावन।
परम पूज्य निर्वाण भूमि शुभ, पावापुर है मन-भावन॥
अखिल जगत में दीपावली, त्यौहार मनाया जाता है।
महावीर निर्वाण महोत्सव, धूम मचाता आता है॥
हे प्रभु! महावीर जिन स्वामी, गुण अनन्त के हो धामी।
भरतक्षेत्र के अन्तिम तीर्थङ्कर, जिनराज विश्वनामी॥
मेरी केवल एक विनय है, मोक्ष-लक्ष्मी मुझे मिले।
भौतिक लक्ष्मी के चक्कर में, मेरी श्रद्धा नहीं हिले॥
भव-भव जन्म-मरण के चक्कर, मैंने पाये हैं इतने।
जितने रजकण इस भूतल पर, पाये हैं प्रभु दुःख उतने॥
अवसर आज अपूर्व मिला है, शरण आपकी पायी है।
भेदज्ञान की बात सुनी है, तो निज की सुधि आयी है॥
अब मैं कहीं नहीं जाऊँगा, जब तक मोक्ष नहीं पाऊँ।
दो आशीर्वाद हे स्वामी! नित्य नये मङ्गल गाऊँ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां निर्वाणकल्याणकप्राप्ताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

दीपमालिका पर्व पर, महावीर उर धार।
भावसहित जो पूजते, पाते सौख्य अपार॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

अक्षय-तृतीया पर्व पूजन

(पं. राजमलजी पवैया कृत)

(ताटंक)

अक्षय-तृतीया पर्व दान का, ऋषभदेव ने दान लिया।
नृप श्रेयांस दान-दाता थे, जगती ने यशगान किया॥
अहो दान की महिमा, तीर्थङ्कर भी लेते हैं आहार ?।
होते पञ्चाश्चर्य पुण्य का, भरता है अपूर्व भण्डार॥
मोक्षमार्ग के महाव्रती को, भावसहित जो देते दान।
निजस्वरूप जप वह पाते हैं, निश्चित शाश्वत पदनिर्वाण॥
दान तीर्थ के कर्ता नृप श्रेयांस, हुए प्रभु के गणधर।
मोक्ष प्राप्त कर सिद्ध लोक में, पाया शिवपद अविनश्वर॥
प्रथम जिनेश्वर आदिनाथ प्रभु! तुम्हें नमन है बारम्बार।
गिरि कैलाश शिखर से तुमने, लिया सिद्धपद मंगलकार॥
नाथ आपके चरणाम्बुज में, श्रद्धा सहित प्रणाम करूँ।
त्यागधर्म की महिमा गाऊँ, मैं सिद्धों का धाम वरूँ।
शुभ वैशाख शुक्ल तृतीया का, दिवस पवित्र महान हुआ।
दान धर्म की जय-जय गूँजी, अक्षय पर्व प्रधान हुआ॥

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर, अवतर, संवौषट् इति आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठः ठः इति स्थापननम्।
ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो, भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(वीरछन्द)

कर्मोदय से प्रेरित होकर, विषयों का व्यापार किया।
उपादेय को भूल हेय तत्त्वों, से मैंने प्यार किया॥
जन्म-मरण दुख नाश हेतु मैं,आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।
अक्षय-तृतीय पर्व दान का, नृप श्रेयांस सुयश गाऊँ॥अक्षय ॥

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मन-वच-काया की चंचलता, कर्म आस्रव करती है।
चार कषायों की छलना ही, भवसागर दुःख भरती है॥
भवाताप के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।
अक्षय-तृतीया पर्व दान का, नृप श्रेयांस सुयश गाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

इन्द्रिय विषयों के सुख क्षणभंगुर, विद्युत सम चमक अथिर।
पुण्य-क्षीण होते ही आते, महा असाता के दिन फिर॥
पद अखण्ड की प्राप्ति हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ॥अक्षय ॥

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

शील विनय व्रत तप धारण, करके भी यदि परमार्थ नहीं।
बाह्य क्रियाओं में से उलझे, वह सच्चा पुरुषार्थ नहीं॥
कामबाण के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ॥अक्षय ॥

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय! कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

विषय लोलुपी भोगों की, ज्वाला में जल-जल दुख पाता।
मृग-तृष्णा के पीछे पागल, नर्क-निगोदादिक जाता॥
क्षुधा व्याधि के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ॥अक्षय ॥

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानस्वरूप आत्मा का, जिसको श्रद्धान नहीं होता।
भव-वन में ही भटका करता, है निर्वाण नहीं होता॥
मोह-तिमिर के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ॥अक्षय॥

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म फलों को वेदन करके, सुखी दुखी जो होता है।
अष्ट प्रकार कर्म का बन्धन, सदा उसी को होता है॥
कर्म शत्रु के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ॥अक्षय॥

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जो बन्धन से विरक्त होकर, बन्धन का अभाव करता।
प्रज्ञाछैनी ले बन्धन को, पृथक् शीघ्र निज से करता॥
महामोक्ष-फल प्राप्ति हेतु, मैं आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।
अक्षय-तृतीया पर्व दान का, नृप श्रेयांस सुयश गाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

पर मेरा क्या कर सकता है, मैं पर का क्या कर सकता।
यह निश्चय करनेवाला ही, भव-अटवी के दुख हरता॥
पद अनर्घ्य की प्राप्ति हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ॥अक्षयं॥

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

चार दान दो जगत में, जो चाहो कल्याण।
औषधि भोजन अभय अरु, सद् शास्त्रों का ज्ञान॥

(ताटंक)

पुण्यपर्व अक्षय तृतीया का, हमें दे रहा है यह ज्ञान।
दान धर्म की महिमा अनुपम, श्रेष्ठ दान दे बनो महान॥
दान धर्म की गौरव गाथा, का प्रतीक है यह त्यौहार।
दान धर्म का शुभ प्रेरक है, सदा दान की जय-जयकार॥
आदिनाथ ने अर्द्ध वर्ष तक, किये तपस्या मय उपवास।
मिली न विधि फिर अन्तराय, होते-होते बीते छः मास॥
मुनि आहारदान देने की, विधि थी नहीं किसी को ज्ञात।
मौन साधना में तन्मय हो, प्रभु विहार करते प्रख्यात॥
नगर हस्तिनापुर के अधिपति, सोम और श्रेयांस सुभ्रात।
ऋषभदेव के दर्शन कर, कृतकृत्य हुए पुलकित अभिजात॥

श्रेयांस को पूर्वजन्म का, स्मरण हुआ तत्क्षण विधिकार।
विधिपूर्वक पड़गाहा प्रभु को, दिया इक्षुरस का आहार॥
पंचाश्चर्य हुए प्रांगण में, हुआ गगन में जय-जयकार।
धन्य-धन्य श्रेयांस दान का, तीर्थ चलाया मंगलकार॥
दान-पुण्य की यह परम्परा, हुई जगत में शुभ प्रारम्भ।
हो निष्काम भावना सुन्दर, मन में लेश न हो कुछ दम्भ॥
चार भेद हैं दान धर्म के, औषधि-शास्त्र-अभय-आहार।
हम सुपात्र को योग्य दान दे, बनें जगत में परम उदार॥
धन वैभव तो नाशवान हैं, अतः करें जी भरकर दान।
इस जीवन में दान कार्य कर, करें स्वयं अपना कल्याण॥
अक्षय तृतीया के महत्व को, यदि निज में प्रकटायेंगे।
निश्चित ऐसा दिन आयेगा, हम अक्षय-फल पायेंगे॥
हे प्रभु आदिनाथ! मंगलमय, हम को भी ऐसा वर दो।
सम्यग्ज्ञान महान सूर्य का, अन्तर में प्रकाश कर दो॥

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय! महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

अक्षय तृतीया पर्व की, महिमा अपरम्पार।
त्याग धर्म जो साधते, हो जाते भव पार॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अंजुलि-जल सम जवानी क्षीण होती जा रही।
प्रत्येक पल जर्जर जरा नजदीक आती जा रही॥
काल की काली घटना प्रत्येक क्षण मँडरा रही।
किन्तु पल-पल विषय तृष्णा तरुण होती जा रही॥

-डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

श्रीश्रुतपंचमी पूजन

(ताटंक)

स्याद्वादमय द्वादशंग युत माँ जिनवाणी कल्याणी।
जो भी शरण हृदय से लेता हो जाता केवलज्ञानी॥
जय जय जय हितकारी शिव सुखकारी माता जय जय जय।
कृपा तुम्हारी से ही होता भेद-ज्ञान का सूर्य उदय॥
श्री धरसेनाचार्य कृपा से मिला परम जिनश्रुत का ज्ञान।
भूतबली मुनि पुष्पदन्त ने षट्खण्डागम रचा महान॥
अकंलेश्वर में यह ग्रन्थ हुआ था पूर्ण आज के दिन।
जिनवाणी लिपिबद्ध हुई थी पावन परम आज के दिन॥
ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी दिवस जिनश्रुत का जय जयकार हुआ।
श्रुत पंचमी पर्व पर श्री जिनवाणी का अवतार हुआ॥

ॐ ह्रीं परमश्रुतषट्खण्डागम! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति आह्वाननम्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरमण्।

शुभ स्वानुभव जल धारा से यह जीवन पवित्र कर लूँ।
साम्य भाव पीयूष पान कर जन्म-जरामय दुःख हर लूँ॥
श्रुतपंचमी पर्व शुभ उत्तम जिन श्रुत को वन्दन कर लूँ।
षट् खण्डागम धवल जयधवल महाधवल पूजन कर लूँ॥

ॐ ह्रीं श्रीपरमश्रुतषटखण्डागमाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव का उत्तम पावन चन्दन चर्चित कर लूँ।
भव दावानल के ज्वालामय अघ संताप ताप हर लूँ॥ श्रुत.॥

ॐ ह्रीं श्रीपरमश्रुतषटखण्डागमाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव के परमोत्तम अक्षत शुद्ध हृदय धर लूँ।
परमशुद्ध चिद्रूप शक्ति से अनुपम अक्षय पद वर लूँ॥ श्रुत.॥

ॐ ह्रीं परमश्रुतषट्खण्डागमाय अक्षयप्रदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव के पुष्पों से निज अन्तर सुरभित कर लूँ।
महाशील गुण के प्रताप से मैं कन्दर्प दर्प हर लूँ॥ श्रुत. ॥
ॐ ह्रीं परमश्रुतषट्खण्डागमाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव के अति उत्तम प्रभु नैवेद्य प्राप्त कर लूँ।
अमल अतीन्द्रिय निजस्वभाव से दुखमय क्षुधाव्याधि हर लूँ॥ श्रुत. ॥
ॐ ह्रीं परमश्रुतषट्खण्डागमाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव के प्रकाशमय दीप प्रज्वलित मैं कर लूँ।
मोह तिमिर अज्ञान नाशकर निज कैवल्य ज्योति वर लूँ॥ श्रुत. ॥
ॐ ह्रीं परमश्रुतषट्खण्डागमाय अज्ञानान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव गन्ध सुरभिमय ध्यान धूप उर में भर लूँ।
संवर सहित निर्जरा द्वारा मैं वसु कर्म नष्ट कर लूँ॥ श्रुत. ॥
ॐ ह्रीं परमश्रुतषट्खण्डागमाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव का फल पाऊँ मैं लोकाग्र शिखर वर लूँ।
अजर अमर अविकल अविनाशी पदनिर्वाण प्राप्त कर लूँ॥ श्रुत. ॥
ॐ ह्रीं परमश्रुतषट्खण्डागमाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव दिव्य अर्घ्य ले रत्नत्रय सुपूर्ण कर लूँ।
भवसमुद्र को पार करूँ प्रभु निज अनर्घ्य पद मैं वर लूँ॥ श्रुत. ॥
ॐ ह्रीं परमश्रुतषट्खण्डागमाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(ताटंक)

श्रुतपंचमी पर्व अतिपावन है श्रुत के अवतार का।
गूँजा जय जयकार जगत में जिन श्रुत के जय जयकार का॥
ऋषभदेव की दिव्यध्वनि का लाभ पूर्ण मिलता रहा।
महावीर तक जिनवाणी का विमल वृक्ष खिलता रहा॥

हुए केवली अरु श्रुतकेवली ज्ञान अमर फलता रहा।
फिर आचार्यों के द्वारा यह ज्ञान दीप जलता रहा॥

भव्यों में अनुराग जगाता मुक्तिवधू के प्यार का।
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का॥

गुरु परम्परा से जिनवाणी निर्झर-सी झरती रही।
मुमुक्षुओं को परम मोक्ष का पथ प्रशस्त करती रही॥

किन्तु काल की घड़ी मनुज की स्मरण शक्ति हरती रही।
श्री धरसेनाचार्य हृदय में करुण टीस भरती रही॥

द्वादशांग का लोप हुआ तो क्या होगा संसार का।
श्रुतपंचमी पर्व अतिपावन है श्रुत के अवतार का॥

शिष्य भूतबलि पुष्पदन्त की हुई परीक्षा ज्ञान की।
जिनवाणी लिपिबद्ध हेतु श्रुत विद्या विमल प्रदान की॥

ताड़ पत्र पर हुई अवतरित वाणी जन कल्याण की।
षट्खण्डागम महाग्रन्थ करणानुयोग जय ज्ञान की॥

ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी दिवस था सुरनर मङ्गलचार का।
श्रुतपंचमी पर्व अतिपावन है श्रुत के अवतार का॥

धन्य भूतबलि पुष्पदन्त जय श्री धरसेनाचार्य की।
लिपि परम्परा स्थापित करके नई क्रान्ति साकार की॥

देवों ने पुष्पों की वर्षा नभ से अगणित बार की।
धन्य-धन्य जिनवाणी माता निज-पर भेद विचार की॥

ऋणी रहेगा विश्व तुम्हारे निश्चय का व्यवहार का।
श्रुतपंचमी पर्व अतिपावन है श्रुत के अवतार का॥

धवला टीका वीरसेन कृत बहत्तर हजार श्लोक।
जय धवला जिनसेनवीर कृत उत्तम साठ हजार श्लोक॥
महाधवल है देवसेन कृत है चालीस हजार श्लोक।
विजय धवल अरु अतिशय धवल नहीं उपलब्ध एक श्लोक॥
षटखण्डागम टीकाऐं पढ़ मन होता भव पार का।
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का॥
फिर तो ग्रन्थ हजारों लिक्खे ऋषि मुनियों ने ज्ञानप्रधान।
चारों ही अनुयोग रचे जीवों पर करके करुणा दान॥
पुण्य कथा प्रथमानुयोग द्रव्यानुयोग है तत्त्व प्रधान।
एक्सरे करणानुयोग चरणानुयोग कैमरा महान॥
यह परिणाम नापता है, वह बाह्य चरित्र विचार का।
श्रुतपंचमी पर्व अतिपावन है श्रुत के अवतार का॥
जिनवाणी की भक्ति करें हम जिनश्रुत की महिमा गायें।
सम्यग्दर्शन का वैभव ले भेद-ज्ञान निधि को पायें॥
रत्नत्रय का अवलम्बन लें निज स्वरूप में रम जायें।
मोक्षमार्ग पर चलें निरन्तर फिर न जगत में भरमायें॥
धन्य-धन्य अवसर आया है अब निज के उद्धार का।
श्रुतपंचमी पर्व अति पावन है श्रुत के अवतार का॥
गूँजा जय-जय नाद जगत में जिन श्रुत जय-जयकार का।

ॐ ह्रीं परमश्रुतषट्खण्डागमाय जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

श्रुत पंचमी सुपर्व पर, करो तत्त्व का ज्ञान।
आत्मतत्त्व का ध्यान कर, पाओ पद निर्वाण॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

श्रीभरतजिन पूजन

(दोहा)

त्याग प्रभु तुम चल दिये, छह खण्डों का राज।
प्रकटा केवल हो गये, तीन लोक सिरताज॥
छवि नयनों को भा गयी, मम उर रहो विराज।
कोटि-कोटि वन्दन तुम्हें, भरत प्रभु जिनराज॥

ॐ ह्रीं श्रीभरतजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीभरतजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीभरतजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(ताटंक)

मेरा स्वभाव शुचितामय है, मैं अशुचि देह में रमा रहा।
जल से मल को मैं दूर करूँ, सब विफल यत्न में लगा रहा।
छवि शान्त तेरी निरखी जिनवर! मुझको आनन्द महान हुआ।
हे भरत प्रभु! जय भरत प्रभ! अब निजस्वभाव श्रद्धान हुआ॥

ॐ ह्रीं श्रीभरतजिनेन्द्र जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शीतलता मेरा निजस्वभाव, चिर मिथ्या-अग्नि-तप्त रहा।
चन्दन से पाऊँ शीतलता, यह मान सदा संतप्त रहा॥ छवि॥

ॐ ह्रीं श्रीभरतजिनेन्द्र संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षय अखण्ड मैं अविकारी, अक्षय पद को मैं बिसर गया।
क्षतपर्यायों की बुद्धि से ही, भवअटवी में अटक गया॥छवि॥

ॐ ह्रीं श्रीभरतजिनेन्द्र अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

निष्काम स्वरूप सदा मेरा, मैं काम-भोग में व्यस्त रहा।
विषयों की तुष्टि सुख देगी, इन भोगों में मैं त्रस्त रहा॥ छवि॥

ॐ ह्रीं श्रीभरतजिनेन्द्र कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

है मम स्वरूप अन-आहारी, तन-क्षुधा-व्याधि को पोष रहा।
षट्रस-व्यंजन के पोषण से, दुःख घोर अनादि भोग रहा॥छवि॥

ॐ ह्रीं श्रीभरतजिनेन्द्र क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं सदा प्रकाशित ज्ञानपुंज, मैं मिथ्या-तम से अन्ध रहा।
स्वपर दरशायक ज्योत न देखी, जगत-कूप में बन्द रहा ॥छवि ॥

ॐ ह्रीं श्रीभरतजिनेन्द्र मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शाश्वत भाव पारिणामिक, मैं करमों से निरपेक्ष सदा।
जड़कर्मों को कर्ता माना, छक रहा नित्य मिथ्यात्व मुधा ॥छवि ॥

ॐ ह्रीं श्रीभरतजिनेन्द्र अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं शक्ति पुंज वीरज मण्डित, जो मोक्ष महाफल को पाता।
पर पापपुण्य के दुष्फल में, चिरकाल रहा मैं भरमाता ॥छवि ॥

ॐ ह्रीं श्रीभरतजिनेन्द्र मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

तुम चक्रवर्ती अनुपम प्रभुवर! जो निज स्वभाव संधान किया।
निजबल पुरुषार्थ चक्र द्वारा, वसु कर्मों का अवसान किया ॥
छवि शान्त तेरी निरखी जिनवर! मुझको आनन्द महान हुआ।
हे भरत प्रभु! जय भरत प्रभ! अब निजस्वभाव श्रद्धान हुआ ॥

ॐ ह्रीं श्रीभरतजिनेन्द्र अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

ऋषभदेव के पुत्र तुम, पिता-पन्थ पर धाय।
मोक्ष-राज को पा लिया, ध्यान-चक्र प्रकटाय ॥

(मानव)

छह खण्डों के थे स्वामी, भरतेश अतुल बलवानी।
वैभव अकूत के धारी, पर ज्यों पंकज अरु पानी ॥
दरबार में एक दिवस जब, मुख को दर्पण में देखा।
झुरकी कपाल में देखी, मानो मुक्ति का सन्देशा ॥
वैराग्य हृदय में जागा, वन-गमन की है तैयारी।
चले राज-पाट को तजकर, स्व-गुरु बन दीक्षा सँभारी ॥
हे अचिन्त्य आत्मबल धारी, जब ध्यान अश्व पर धाये।

निर्जरा घाति-कर्मों की, नहिं कर्म-रेणु टिक पाये॥
प्रकटीं नव केवल-लब्धि, जब केवलज्ञान उपाया।
हो गये प्रभु परमातम, त्रैलोक्य हर्ष है छाया॥
तब ही कुबेर ने आकर, की गन्धकुटी संरचना।
आसीन हुए भरतेश्वर, झरें दिव्यध्वनि के वचना॥
आतम है भिन्न सभी से, बस ज्ञाता-दृष्टा मानो।
निज-पर विवेक से निज को, निज में ही देखो-जानो॥
हैं जीव सफल जग भर के, शक्ति में सिद्ध-समाना।
निज शक्ति को पहिचानो, यदि सुख है अनाकुल पाना॥
थी भोर की स्वर्णिम आभा, हिम-शिखरों लाली छायी।
तब समुद्घात के द्वारा, आत्मा त्रैलोक्य समायी॥
खिर गये कर्म-रज सारे, लोकाग्र प्रभु जा विराजे।
जगती में आनन्द छाया, बज रहे देवकृत बाजे॥
मर्दन कर वसु कर्मों का, गुण दिव्य अष्ट प्रकटाये।
आनन्द परम तुम भोगो, हम भक्ति-प्रमोद मनाये॥
है नमन तुम्हें सिद्धातम, हे भरत नाथ परमेश्वर।
दीजे सन्मति हम सबको, है यही आश करुणेश्वर॥

ॐ ह्रीं श्रीभरतजिनेन्द्र अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

भरत छवि उर धाय के, कर लीनों निरधार।
अब निज आतम को लखूँ, तो उतरूँ भव-पार॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

श्रीबाहुबली पूजन

(ताटंक)

जयति बाहुबलि स्वामी जय जय करूँ वन्दना बारम्बार।
निज स्वरूप का आश्रय लेकर, आप हुए भवसागर पार॥
हे त्रैलोक्यनाथ त्रिभुवन में, छायी महिमा अपरम्पार।
सिद्धस्वपद की प्राप्ति हो गयी, हुआ जगत में जय-जयकार॥
पूजन करने मैं आया हूँ, अष्ट द्रव्य का ले आधार।
यही विनय है चारों गति के दुःख से मेरा हो उद्धार॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलीस्वामिन! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलीस्वामिन! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलीस्वामिन! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

उज्जवल निर्मल जल प्रभु पद-पंकज में आज चढ़ाता हूँ।
जन्म-मरण का नाश करूँ, आनन्दकन्द गुण गाता हूँ॥
श्री बाहुबलि स्वामी प्रभुवर चरणों में शीश झुकाता हूँ।
अविनश्वर शिव-सुख पाने को, नाथ शरण में आता हूँ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलीस्वामिने! जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शीतल मलय सुगन्धित पावन, चन्दन भेंट चढ़ाता हूँ।
भव आताप नाश हो मेरा, ध्यान आपका ध्याता हूँ॥ श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलीस्वामिने! संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम शुभ्र अखण्डित तन्दुल, हर्षित चरण चढ़ाता हूँ।
अक्षयपद की सहजप्राप्ति हो, यही भावना भाता हूँ॥ श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलीस्वामिने! अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

काम-शत्रु के कारण अपना, शील स्वभाव न पाता हूँ।
कामभाव का नाश करूँ मैं, सुन्दर पुष्प चढ़ता हूँ॥ श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलीस्वामिने! कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तृष्णा की भीषण ज्वाला में, प्रभु प्रतिपल जलता जाता हूँ।
क्षुधारोग से रहित बनूँ मैं, शुभ नैवेद्य चढ़ाता हूँ॥ श्री. ॥
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलीस्वामिने! क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोह ममत्व आदि के कारण, सम्यक् मार्ग न पाता हूँ।
यह मिथ्यात्वतिमिर मिट जाये, प्रभुवर दीप चढ़ाता हूँ॥ श्री. ॥
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलीस्वामिने! मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

है अनादि से कर्म बन्ध दुःखमय, न पृथक् कर पाता हूँ।
अष्टकर्म विध्वंस करूँ, अत एव सुधूप चढ़ाता हूँ॥ श्री. ॥
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलीस्वामिने! अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज भाव सम्पदा युक्त होकर भी, भव-दुःख पाता हूँ।
परम मोक्षफल शीघ्र मिले, उत्तम फल चरण चढ़ाता हूँ॥ श्री. ॥
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलीस्वामिने! मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्य भाव से स्वर्गादिक पद, बार-बार पा जाता हूँ।
निज अनर्घ्यपद मिला न अबतक, इससे अर्घ्य चढ़ाता हूँ॥ श्री. ॥
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलीस्वामिने! अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(ताटंक)

आदिनाथ सुत बाहुबलि प्रभु, मात सुनन्दा के नन्दन।
चरम शरीरी कामदेव तुम, पोदनपुर पति अभिनन्दन॥
छह खण्डों पर विजय प्राप्त कर, भरत चढ़े वृषभाचल पर।
अगणित चक्री हुए नाम लिखने को, मिला न थल तिल भर॥
मैं ही चक्री हुआ, अहं का मान धूल हो गया तभी।
एक प्रशस्ति मिटा कर अपनी, लिखी प्रशस्ति स्वहस्त जभी॥
चले अयोध्या किन्तु नगर में, चक्र प्रवेश न कर पाया।
ज्ञात हुआ लघु भ्रात बाहुबलि सेवा में न अभी आया॥

भरत चक्रवर्ती ने चाहा, बाहुबलि आधीन रहे।
ठुकराया आदेश भरत का, तुम स्वतन्त्र स्वाधीन रहे॥
भीषण युद्ध छिड़ा दोनों भाई के मन संताप हुए।
दृष्टि मल्ल जल युद्ध भरत से करके विजयी आप हुए॥
क्रोधित होकर भरत चक्रवर्ती ने चक्र चलाया है।
तीन प्रदक्षिणा देकर कर में, चक्र आपके आया है॥
विजय चक्रवर्ती पर पाकर, उर वैराग्य जगा तत्क्षण।
राज्यपाट तज ऋषभदेव के, समवसरण को किया गमन॥
धिक्-धिक् यह संसार और इसकी असारता को धिक्कार।
तृष्णा की अनन्त ज्वाला में, जलता आया है संसार॥
जग की नश्वरता का तुमने, तब किया चिन्तवन बारम्बार।
देह भोग संसार आदि से, हुई विरक्ति पूर्ण साकार॥
आदिनाथ प्रभु से दीक्षा ले, व्रत संयम को किया ग्रहण।
चले तपस्या करने वन में, रत्नत्रय को कर धारण॥
एक वर्ष तक किया कठिन तप, कायोत्सर्ग मौन पावन।
किन्तु शल्य थी एक हृदय में, भरत-भूमि पर है आसन॥
केवलज्ञान नहीं हो पाया, अल्प राग ही के कारण।
परिषह शीत ग्रीष्म वर्षादिक, जय करके भी अटका मन॥
भरत चक्रवर्ती ने आकर, श्री चरणों में किया नमन।
कहा कि वसुधा नहीं किसी की, मान त्याग दो हे भगवन्॥
तत्क्षण राग विलीन हुआ, तुम शुक्लध्यान में लीन हुए।
फिर अन्तर्मुहूर्त में स्वामी, मोह क्षीण स्वाधीन हुए॥
चार घातिया कर्म नष्ट कर, आप हुए केवलज्ञानी।
जय-जयकार विश्व में गूँजा, जगती सारी मुसकानी॥
झलका लोकालोक ज्ञान में, सर्व द्रव्य गुण पर्यायें।
एक समय में भूत भविष्यत, वर्तमान सब दर्शायें॥

फिर अघातिया कर्म विनाशे, सिद्ध लोक में गमन किया।
पोदनपुर से मुक्ति हुई, तीनों लोकों ने नमन किया॥
महा मोक्ष फल पाया तुमने, ले स्वभाव का अवलम्बन।
हे भगवान बाहुबलि स्वामी, कोटि-कोटि शत शत वन्दन॥
आज आपका दर्शन करने, चरणों में मैं आया हूँ।
शुद्ध स्वभाव प्राप्त हो मुझको, यही भाव भर लाया हूँ॥
भाव शुभाशुभ भव निर्माता, शुद्ध भाव का दो प्रभु दान।
निज परिणति में रमण करूँ प्रभु, हो जाऊँ मैं आप समान॥
समकित दीप जले अन्तर में, तो अनादि मिथ्यात्व गले।
राग-द्वेष परिणति हट जाये, पुण्य-पाप सन्ताप टले॥
त्रैकालिक ज्ञायक स्वभाव का, आश्रय लेकर बढ़ जाऊँ।
शुद्धात्मानुभूति के द्वारा, मुक्ति-शिखर पर चढ़ जाऊँ॥
मोक्ष-लक्ष्मी को पाकर भी, निजानन्द रसलीन रहूँ।
सादि-अनन्त सिद्ध पद पाऊँ, सदा सुखी स्वाधीन रहूँ॥
आज आपका रूप निरख कर, निज स्वरूप का भान हुआ।
तुम-सम बने भविष्यत् मेरा, यह दृढ़ निश्चय ज्ञान हुआ॥
हर्ष विभोर भक्ति से पुलकित, होकर की है यह पूजन।
प्रभु पूजन का सम्यक् फल हो, कटें हमारे भव-बन्धन॥
चक्रवर्ती इन्द्रादिक पद की, नहीं कामना है स्वामी।
शुद्ध बुद्ध चैतन्य परम पद, पायें हे अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलीस्वामिने! अनर्घ्यपदप्राप्तये जलमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

घर-घर मङ्गल छाये जग में, वस्तु स्वभाव धर्म जानें।
वीतराग-विज्ञान ज्ञान से, शुद्धातम को पहिचानें॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

श्रीसमवसरण पूजन

(ताटंक)

तीर्थङ्कर प्रभु मोह क्षीणकर, जब प्रकटाते केवलज्ञान।
इन्द्र आज्ञा से कुबेर रचना, करता स्वर्गों से आन॥
बारह सभा जहाँ जुड़ती हैं, होता है प्रभु का उपदेश।
ओंकारमय दिव्यध्वनि से, पाते सभी जीव सन्देश॥
पुण्योदय से समवसरण अरु, जिनमन्दिर मैंने पाया।
अष्ट द्रव्य ले विनय भाव से, पूजन करने मैं आया॥
श्री जिनवर के समवसरण को, भावसहित मैं करूँ प्रणाम।
वीतराग पावन मुद्रा, दर्शनकर ध्याऊँ आठों याम॥

ॐ ह्रीं श्रीसमवसरणमध्यविराजमानजिनेन्द्रदेव! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीसमवसरणमध्यविराजमानजिनेन्द्रदेव! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीसमवसरणमध्यविराजमानजिनेन्द्रदेव! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टादश दोषों से विरहित, अरहन्तों को नमन करूँ।
अनुभव रस अमृत जल पीकर, त्रिविधताप को शमन करूँ॥
जिन तीर्थङ्कर समवसरण को, भावसहित मैं नमन करूँ।
पूर्ण शुद्ध ज्ञायक स्वरूप, मैं मोक्षमार्ग अनुसरण करूँ॥

ॐ ह्रीं श्रीसमवसरणमध्यविराजमानतीर्थकराय! जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि.।

छयालीस गुण मण्डित प्रभुवर, अरहन्तों को नमन करूँ।
अनुभव रस चन्दन शीतल पा, भव-आताप का हरण करूँ॥ जिन॥

ॐ ह्रीं श्रीसमवसरणमध्यविराजमानतीर्थकराय! संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि.।

चार अनन्त चतुष्टय धारी, अरहन्तों को नमन करूँ।
अनुभव रसमय अक्षत पाकर, भवसमुद्र का हरण करूँ॥ जिन॥

ॐ ह्रीं श्रीसमवसरणमध्यविराजमानतीर्थकराय! अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि.।

जन्मसमय दश ज्ञानसमय दश, अतिशययुत प्रभु नमन करूँ।
अनुभव रस के पुष्प प्राप्तकर, कामबाण का हनन करूँ॥ जिन॥
ॐ ह्रीं श्रीसमवसरणमध्यविराजमानतीर्थकराय! कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि.।
देवोपम चौदह अतिशय संयुक्त, देव को नमन करूँ।
अनुभव रस नैवेद्य प्राप्त कर, क्षुधारोग का हरण करूँ॥ जिन॥
ॐ ह्रीं श्रीसमवसरणमध्यविराजमानतीर्थकराय! क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि.।
अष्ट प्रातिहार्यों से शोभित, अरहन्तों को नमन करूँ।
अनुभव रसमय दीपज्योति पा, मोहतिमिर को हनन करूँ॥ जिन॥
ॐ ह्रीं श्रीसमवसरणमध्यविराजमानतीर्थकराय! मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि.।
नव क्षायिक लब्धियाँ प्राप्त, जिनवर देवों को नमन करूँ।
अनुभव रस की धूप बनाकर, अष्टकर्म को हरण करूँ॥ जिन॥
ॐ ह्रीं श्रीसमवसरणमध्यविराजमानतीर्थकराय! अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं नि.।
वसु मंगल द्रव्यों में शोभित, गन्धकुटी को नमन करूँ।
अनुभव रस के फल मैं पाऊँ, मोक्षस्वपद का वरण करूँ॥ जिन॥
ॐ ह्रीं श्रीसमवसरणमध्यविराजमानतीर्थकराय! मोक्षफलप्राप्तये फलं नि.।
परमौदारिक देह प्राप्त श्री अरहन्तों को नमन करूँ।
अनुभव रस के अर्घ्य बनाऊँ मैं अनर्घ्य पद वरण करूँ॥ जिन॥
ॐ ह्रीं श्रीसमवसरणमध्यविराजमानतीर्थकराय! अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

जयमाला

(दोहा)

समवसरण जिनराज का, महापूज्य द्युतिवान।
भव्यजीव उपदेश सुन, करते निज कल्याण॥

(ताटंक)

ऋषभदेव के समवसरण का, बारह योजन का विस्तार।
अर्द्ध अर्द्ध घटते सन्मति तक, रहा एक योजन विस्तार॥

शत इन्द्रों से वन्दित श्री जिनवर का समवसरण सुन्दर।
तीन लोक का सारा वैभव, प्रभुचरणों में न्यौछावर॥
सौ योजन तक नहीं कहीं, दुर्भिक्ष दृष्टि में आता।
भूमि स्वच्छ दर्पणवत होती, गन्धोदक नित बरसाता॥
गोलाकार समवसरण रचना, होती है उन्नत आकाश।
चारों दिशि में बीस सहस्त्र, सीढ़ियाँ होतीं भू आकाश॥
चार कोट अरु पाँच वेदि के, बीच भूमि होती हैं आठ।
चारों ओर वीथियाँ होतीं, गुन्धकुटी तक अनुपम ठाठ॥
पार्श्व वीथियों में दो दो, वेदी होती हैं रत्नमयी।
सभी भूमियों के पथ होते, सुन्दर तोरण द्वारमयी॥
द्वारों पर नवनिधि व धूप, घट मङ्गल द्रव्य सजे होते।
साढ़े बारह कोटि वाद्य, देवों द्वारा बजते होते॥
द्वार-द्वार के दोनों बाजू, एक-एक नाटक शाला।
जहाँ देव कन्यायें करतीं, नृत्य हृदय हरनेवाला॥
प्रथम कोट की चारों दिशि में, धर्म चक्र होते हैं चार।
धूलि शाल है नाम मनोहर, मानस्तम्भ बने हैं चार॥
प्रथम भूमि चैत्यालय की है, मन्दिर चारों ओर बने।
फिर वापिका बनी शुभ सुन्दर, जो जल से परिपूर्ण घने॥
द्वितीय कोट फिर पुष्प वाटिकाओं, की पंक्ति महान विशाल।
फिर वन भूमि अशोक आम्र, चंपक अरु सप्त पूर्ण तरु माल॥
तृतीय कोटि में कल्पभूमि, वेदी अरु बनी नृत्यशाला।
भवन भूमि स्तूप मनोहर, ध्वजा, पंक्तियों की माला॥
यही महोदय मण्डप अनुपम, श्रुतकेवलि करते व्याख्यान।

केवलज्ञानलब्धि के धारी, भी देते उपदेश महान॥
चौथा कोटि शाल अतिसुन्दर, कल्पवासि द्वारा रक्षित।
आगे चलकर श्री मण्डप है, महाविभूतियों से भूषित॥
भूमि आठवीं गन्धकुटी है, तीन पीठ पर सिंहासन।
तरु अशोक सिर तीन छत्र हैं, भामण्डल द्युतिमय दर्पण॥
चारों दिशि में जिनप्रभु के मुख, दिखते मानो मुख हों चार।
अन्तरिक्ष जिनदेव विराजे, खिरे दिव्यध्वनि मंगलकार॥
तीनलोक की सकल सम्पदा, चरणों में करती वन्दन।
इन्द्रादि सुर नर मुनि पशु भी, चरणों में होते अर्पण॥
द्वादश सभा महान बनी हैं, दिव्यध्वनि का मोद अपार।
नभ से पुष्प वृष्टि सुर करते, होता जयध्वनि का उच्चार॥
द्वादश कोठे हैं पहले में, गणधर ऋषि-मुनि रहे विराज।
दूजे कल्पवासि देवियाँ, तीजे रहीं आर्यिका साज॥
चौथे में ज्योतिषी देवियाँ, पंचण्म व्यन्तर देवि अमेव।
षष्टम भवनवासि की देवी, सप्तम भवनवासि के देव॥
अष्टम व्यन्तर देव बैठते, नवम ज्योतिषी देव प्रसिद्ध।
दसवें कल्पवासि सुर होते, ग्यारहवें में मनुज प्रसद्ध॥
बारहवें कोटे में बैठे हैं, तिर्यंच जीव चुपचाप।
तीर्थङ्कर की ध्वनि सुन सब, हर लेते हैं मन का सन्ताप॥
प्रभु महात्म्य से रोग मरण, आपत्ति बैर तृष्णा न कहीं।
कामक्षुधामय पीड़ा दुख, आतंक यहाँ पर कहीं नहीं॥
पंचमेरु के क्षेत्र विदेहों में है समवसरण प्रख्यात।
विद्यमान तीर्थङ्कर बीस, विराजित हैं शाश्वत विख्यात॥

प्रभु की अमृत वाणी सुनकर, कर्ण तृप्त हो जाते हैं।
जन्म-जन्म के पातक क्षण में, शीघ्र विलय हो जाते हैं॥
जब विहार होता है प्रभु का, सुर रचते हैं स्वर्ण कमल।
जहाँ-जहाँ प्रभु जाते होती, समवसरण रचना अविकल॥
समवसरण रचना का वर्णन, करने की प्रभु शक्ति नहीं।
सोलह कारण भव्यभावना भाये बिन प्रभु भक्ति नहीं॥
ऐसी निर्मल बुद्धि मुझे दो, निज आतम का ज्ञान करूँ।
समवसरण की पूजन करके, शुद्धातम का ध्यान करूँ॥
पाप-पुण्य आस्रव विनाशकर राग-द्वेष पर जय पाऊँ।
कर्म-प्रकृतियों पर जय पाकर, सिद्धलोक में आ जाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्रीसमवसरणमध्यविराजमानतीर्थकराय! अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं नि.।

(दोहा)

समवसरण दर्शन करूँ, गाऊँ मङ्गल चार।
भेदज्ञान की शक्ति से, हो जाऊँ भवपार॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

श्रीमानस्तम्भ पूजन

(तातंक)

श्री जिनवर तीर्थङ्कर प्रभु के समवसरण में मानस्तम्भ।
एक-एक हैं चारो दिशि में उत्तम ऊँ मानस्तम्भ॥
सुरकिन्नर, गन्धर्व, यक्ष, व्यन्तर नर सब पूजन करते।
इन्द्रादिक अति भक्ति भाव से विनय सहित वन्दन करते॥
जिनवर मानस्तम्भ देखकर मान स्वयं गल जाता है।
आत्मज्ञान की ज्योति जागती विनय भाव उर आता है॥
मानस्तम्भ महान पूजन का शुभ भाव हृदय आया।
मान भाव पर जय पाने का आज स्वर्ण अवसर पाया॥

ॐ ह्रीं श्रीमानस्तम्भविराजितजिनप्रतिमासमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्रीमानस्तम्भविराजितजिनप्रतिमासमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं श्रीमानस्तम्भविराजितजिनप्रतिमासमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

भेदज्ञान के निर्मल जल से मिथ्यातम क्षय हो भगवन।
आत्मतत्त्व श्रद्धानपूर्वक हो निश्चय सम्यग्दर्शन॥
मानस्तम्भ विराजित जिन प्रतिमाओं को मैं करूँ नमन।
वसुमद मान कषाय नाशकर परमविनय का करूँ वरण॥

ॐ ह्रीं श्रीमानस्तम्भविराजितजिनप्रतिमासमूह! जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि.।

आत्मज्ञान के शीतल चन्दन से भव भय हर लूँ भगवन।
सम्यग्ज्ञान प्राप्तकर स्वामी सफल करूँ यह नर जीवन॥ मान.॥

ॐ ह्रीं श्रीमानस्तम्भविराजितजिनप्रतिमासमूह! संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि.।

साम्यभाव के पावन अक्षत से अक्षय पद लूँ भगवन।
मैं सम्यक्चारित्र धार कर पाऊँ सिद्ध स्वपद दर्शन॥ मान.॥

ॐ ह्रीं श्रीमानस्तम्भविराजितजिनप्रतिमासमूह! अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि.।

कामव्याधि हर महाशील के परम पुष्प पाऊँ भगवन।
अष्टादश सहस्रभेद युत लाख चौरासी उत्तर गुण॥ मान.॥

ॐ ह्रीं श्रीमानस्तम्भविराजितजिनप्रतिमासमूह! कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि.।

संतोषामृत के चरु पाकर क्षुधारोग हर लूँ भगवन।
चिरतृष्णा पर विजय प्राप्तकर पाऊँ पूर्ण तृप्त जीवन॥ मान. ॥
ॐ ह्रीं श्रीमानस्तम्भविराजितजिनप्रतिमासमूह! क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि.।
ज्ञानकिरण की दिव्यज्योति से भ्रमतम मोह हरूँ भगवन।
केवलज्ञान सूर्य प्रकटाऊँ परम विनय का करूँ वरण॥ मान. ॥
ॐ ह्रीं श्रीमानस्तम्भविराजितजिनप्रतिमासमूह! मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि.।
शुक्लध्यान की विमल अग्नि में आठों कर्म जले भगवन।
पूर्ण निर्जरा भाव शक्ति से काटूँ सभी कर्म बन्धन॥ मान. ॥
ॐ ह्रीं श्रीमानस्तम्भविराजितजिनप्रतिमासमूह! अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं नि.।
परम समरसी भावों का फल शीघ्र प्राप्त कर लूँ भगवन।
सादि अनन्त मोक्षपद पाऊँ निजानन्द में रहूँ मगन॥ मान. ॥
ॐ ह्रीं श्रीमानस्तम्भविराजितजिनप्रतिमासमूह! मोक्षफलप्राप्तये फलं नि.।
रत्नत्रय का अर्घ्य मनोहर शुद्ध भावमय लूँ भगवन।
शाश्वत निजअनर्घ्य पद पाऊँ मुक्तिवधू का करूँ वरण॥ मान. ॥
ॐ ह्रीं श्रीमानस्तम्भविराजितजिनप्रतिमासमूह! अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

जयमाला

(दोहा)

मानस्तम्भ महान को, मैं वन्दूँ कर जोड़।
परपदार्थ से दृष्टि निज, अब लूँ हे प्रभु मोड़॥

(ताटंक)

जिनवर समवसरण की चारों दिशि में मानस्तम्भ विशाल।
धूल शालि के निकट सुशोभित नीलगगन में उन्नत माल॥
उच्च शिखर पर चारों दिशि में जिनप्रतिमायें बनी महान।
क्षुद्र घंटिकाओं की मृदुध्वनि गाती हैं प्रभु का यशगान॥
मूल भाग में चारों दिशि में प्रतिमायें शोभित सुन्दर।
इन्द्र क्षीरसागर जल से करते अभिषेक विनय उर धर॥
तीन कोट के बाद तीन पीठों से शोभित होता है।

बीच-बीच में ध्वजा पंक्तियाँ लख मन मोहित होता है॥
चार-चार वापिका चार दिशि में अतिसुन्दर होती हैं।
चार वीथिकायें अतिसुन्दर महानिराली होती हैं॥
भव्य वीथिका नीर कुण्ड में शोभित कमल पंक्ति मनहार।
देवों द्वारा जयध्वनि होती होता नभ में जय जयकार॥
वज्रद्वारमय मध्य भाग में होते हैं ये वृत्ताकार।
ऊपर चमर घण्टिका ध्वज से शोभित सुन्दर दिव्य अपार॥
तीर्थङ्कर की ऊँचाई से बारह गुणी दिव्य ऊँचान।
मूलभाग में रत्न पिटारों में जिन पर आभरण महान॥
समवसरण-सम जिनमन्दिर के प्रांगण में भी मानस्तम्भ।
तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम जिनभवनों में मानस्तम्भ॥
परम विनय से पूजन करके नष्ट करूँ भव का विषकुम्भ।
राग-द्वेष का सर्वनाशकर पाऊँ शिवसुख अमृतकुम्भ॥
आत्मप्रतीति जगे प्रभु मन में विनयशील जीवन पाऊँ।
चार घातिया कर्म विनाशूँ मैं अरहन्त स्वपद पाऊँ॥
यही भावना लेकर स्वामी विनय भाव से आया हूँ।
भवसागर से पार करो प्रभु मैं भव से घबराया हूँ॥
क्रोध मान माया लोभादिक चार कषाय विनाश करूँ।
वीतराग सर्वज्ञ देव बन केवलज्ञान प्रकाश वरूँ॥

ॐ ह्रीं श्रीमानस्तम्भविराजितजिनबिम्बेभ्यो ! जयमालापूर्णार्घ्यं नि.।

(दोहा)

मानस्तम्भ जिनेन्द्र का, देता यह सन्देश।
विनयभाव जो धारते, बनते सिद्ध महेश॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

सरस्वती पूजन

(पं. द्यानतरायजी कृत)

(दोहा)

जनम-जरा-मृतु छय करै, हरै कुनय जड़रीति।
भवसागरसों ले तिरै, पूजैं जिन वच प्रीति॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि! अत्र अवतर, अवतर, संवौषट् इति आह्वाननम्।ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठः ठः इति स्थापनम्। ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि! अत्र मम सन्निहितो, भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(त्रिभंगी)

छीरोदधिगंगा, विमल तरंगा, सलिल अभंगा सुखसंगा।
भरि कंचन झारी, धार निकारी, तृषा निवारी हितचंगा॥
तीर्थङ्कर की धुनि, गणधरने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई।
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन मानी पूज्य भई॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

करपूर मँगाया, चंदन आया, केशर लाया रंग भरी।
शारदपद वंदों, मन अभिनंदों, पाप निकंदों दाह हरी।तीर्थङ्कर॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

सुखदास कमोदं, धारकमोदं, अति अनुमोदं चंदसमं।
बहुभक्ति बढ़ाई, कीरति गाई, होहु सहाई मात ममं।तीर्थङ्कर॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

बहुफूल सुवासं, विमल प्रकाशं, आनन्दरासं लाय धरे।
मम काम मिटायो, शील बढ़ायो, सुख उपजायो दोष हरे।तीर्थङ्कर॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पकवान बनाया, बहुघृत लाया, सब विधि भाया मिष्ट महा।

पूजूँ थुति गाऊँ, प्रीति बढ़ाऊँ, क्षुधा नशाऊँ हर्ष लहा ।तीर्थङ्कर ॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

करि दीपक ज्योतं, तमछय होतं, ज्योति उदोतं तुमहिं चढ़ै।
तुम हो परकाशक, भरमविनाशक, हम घट भासक ज्ञान बढ़ै॥
तीर्थङ्कर की धुनि, गणधरने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई।
सो जिनवर वानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन मानी पूज्य भई॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभगंध दशोंकर, पावक में धर, धूप मनोहर खेवत हैं।
सब पाप जलावैं, पुण्य कमावैं, दास कहावैं सेवत हैं।तीर्थङ्कर॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बादाम छुहारी, लोंग सुपारी, श्रीफल भारी, ल्यावत हैं।
मनवांछित दाता, मेट असाता, तुम गुन माता गावत हैं॥ तीर्थङ्कर॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

नयनन सुखकारी, मृदु गुणधारी, उज्ज्वल भारी मोल धरैं।
शुभगंध सम्हारा, वसन निहारा, तुम तन धारा ज्ञान करैं।तीर्थङ्कर॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै दिव्यज्ञानप्राप्तये वस्त्रं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चन्दन अच्छत, फूलचरुचत, दीप धूप फल अति लावैं।
पूजा को ठानत, जो तुम जानत, सो नर द्यानत सुख पावैं।तीर्थङ्कर॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(सोरठा)

ओंकार धुनिसार, द्वादशांगवाणी विमल।
नमों भक्ति उर धार, ज्ञान करै जड़ता हरै॥

(सोरठा)

पहलो आचारांग बखानो, पद अष्टादश सहस प्रसानो।
दूजो सूत्रकृतं अभिलाषं, पद छत्तीस सहस गुरु भाषं॥
तीजो ठाना अंग सु जानं, सहस बियालिस पद सरधानं।
चौथो समवायांग निहारं, चौंसठ सहस लाख इक धारं॥
पंचम-व्याख्या प्रज्ञप्ति दरसं, दोय लाख अट्ठाइस सहसं।
छट्ठो ज्ञातृकथा विस्तारं, पाँच लाख छप्पन हज्जारं॥
सप्तम उपासकाध्ययनंगं, सत्तर सहस ग्यार लख भंगं।
अष्टम अन्तःकृत दश ईसं, सहस अट्ठाइस लाख तेईसं॥
नवम अनुत्तरदश सुविशालं, लाख बानवै सहस चवालं।
दशम प्रश्न व्याकरण विचारं, लाख तिरानवै सोल हजारं॥
ग्यारम सूत्रविपाक भु भाखं, एक कोड़ चौरासी लाखं।
चार कोड़ि अरु पन्द्रह लाखं, दो हजार सब पद गुरु भाखं॥
द्वादश दृष्टिवाद पनभेदं, इक सौ आठ कोड़िपनवेदं।
अड़सठ लाख सहस छप्पन हैं, सहित पंचपद मिथ्या हन हैं॥
इक सौं बारह कोड़ि बखानो, लाख तिरासी ऊपर जानो।
ठावन सहस पंच अधिकाने, द्वादश अंग सर्व पद माने॥
कोड़ि इकावन आठ हि लाखं, सहस चुरासी छह सौ भाखं।
साढ़े इकवीस श्लोक बताये, एक-एक पद के ये गाये॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

जा वाणी के ज्ञान तै, सूझै लोक-अलोक।
'द्यानत' जग जयवन्त हो, सदा देत हों धोक॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

श्री समयसार पूजन

जय जय जय ग्रन्थाधिराज श्री समयसार जिन श्रुत वन्दन।
कुन्दकुन्द आचार्य रचित परमागम को सादर वन्दन॥
द्वादशांग जिनवाणी का है इसमें सार परम पावन।
आत्म तत्व की सहज प्राप्ति का है अपूर्व अनुपम साधन॥
सीमंधर प्रभु की दिव्यध्वनि इसमें गूँज रही प्रतिक्षण।
इसको हृदयंगम करते ही हो जाता सम्यक्दर्शन॥
समयसार का सार प्राप्त कर सफल करुं मानव जीवन।
सब सिद्धों का वन्दन करके करता विनय सहित पूजन॥

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय पुष्पांजलिं क्षिपामि।

निज स्वरूप को भूल आज तक चारों गति में किया भ्रमण।
जन्म मरण क्षय करने को अब निज स्वरूप में करूँ रमण॥
समयसार का करुँ अध्ययन समयसार का करुँ मनन।
कारण समयसार को ध्याऊँ समयसार को करुँ नमन॥

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव ज्वाला में प्रतिपल जलजल करता रहा करुण क्रन्दन।
निज स्वभाव ध्रुव का आश्रय ले काटूँगा जग के बन्धन॥ समय॥

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्य पाप के मोह जाल में बढ़ी सदा भव की उलझन।
संवरभाव जगा उर में तो, भव समुद्र का हुआ पतन॥ समय॥

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय अक्षय पद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कामभोग बन्धन की कथनी सुनी अनन्तों बार सघन।
चिर परिचित जिनश्रुत अनुभूति न जागी मेरे अंतर्मन॥ समय॥

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुधारोग की औषधि पाने का न किया है कभी जतन।
आत्मभान करके ही महका वीतरागता का उपवन॥
समयसार का करूँ अध्ययन समयसार का करूँ मनन।
कारण समयसार को ध्याऊँ समयसार को करूँ नमन॥

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भ्रम अज्ञान तिमिर के कारण पर में माना अपनापन।
सत्य बोध होते ही पाई ज्ञान सूर्य की दिव्य किरण॥ समय॥

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय मोहान्धकार विनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

आर्त रौद्र ध्यानों में पड़कर पर भावों में रहा मगन।
शुचिमय ध्यान धूप देखी तो धर्म ध्यान की लगी लगन॥ समय॥

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

भव तरु के विषमय फल खाकर करता आया भाव मरण।
सिद्ध स्वपद की चाहजगी तो यह पर्याय हुई धनधन॥ समय॥

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय महामोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आश्रव बंधभाव का कारण मिटा राग का एक न कण।
द्रव्य दृष्टि बनते ही पाया निज अनर्घ पद का दर्शन॥ समय॥

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

समयसार के ग्रन्थ की महिमा अगम अपार।
निश्चय नय भूतार्थ है अभूतार्थ व्यवहार॥
दुर्नय तिमिर निवारण कारण समयसार को करूँ प्रणाम।
हूँ अबद्धस्पृष्ट नियत अविशेष अनन्य मुक्ति का धाम॥
सप्त तत्त्व अरूँ नव पदार्थ का इसमें सुन्दर वर्णन है।
जो भूतार्थ आश्रय लेता पाता सम्यक्दर्शन है॥
जीव अजीव अधिकार प्रथम में भेद ज्ञान की ज्योति प्रधान।

१''जो पस्सदि अप्पाणं'' णियंदं हो जाता सर्वज्ञ महान॥
कर्ता कर्म अधिकार समझकर कर्ता बुद्धि विनाश करूँ।
२''सम्मद्दंसणं णाणं एसो'' निज शुद्धात्म प्रकाश करूँ॥
पुण्य पाप अधिकार जान दोनों में भेद नहीं मानूँ।
ये विभाव परिणति से हैं उत्पन्न बंधमय ही जानूँ॥
३''रत्तों बंधदि कम्मं'' जानूँ उर विराग ले कर्म हरूँ।
राग शुभाशुभ का निषेध कर निज स्वरूप को प्राप्त करूँ॥
मैं आस्रव अधिकार जानकर राग द्वेष अरु मोह हरुँ।
भिन्न द्रव्य आस्रव से होकर भावास्रव को नष्ट करूँ॥
मैं संवर अधिकार समझकर संवरमय ही भाव करूँ।
४''अप्पाणं झायंतो'' दर्शन ज्ञानमयी निज भाव करूँ॥
मैं अधिकार निर्जरा जानूँ पूर्ण निर्जरावन्त बनूँ।
पूर्व उदय में सम रहकर मैं चेतन ज्ञायक मात्र रहूँ॥
५''अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो'' सारे कर्म झराऊँगा।
मैं रतिवन्त ज्ञान में होकर शाश्वत शिव सुख पाऊँगा॥
बन्ध अधिकार, बन्ध की ही तो सकल प्रक्रिया बतलाता।
बिन समकित जप तप व्रत संयम बंध मार्ग है कहलाता॥
राग-द्वेष भावों से विरहित जीव बन्ध से रहता दूर।
६''णिच्छय णया सिदापुणमुणिणो'' अष्टकर्म करता चकचूर॥

(१) स.सा. १५ अपनी आत्मा को.....नियत देखता है.....
(२) स.सा. १४४ सम्यक्दर्शन ज्ञान ऐसी
(३) समयसार १५०-रागी जीव कर्म बांधता है....
(४) स.सा. १८६-आत्मा को ध्याता हुआ.....
(५) स.सा. २१०-११-१२-१३-अनिच्छुक को अपरिग्रही कहा है.....
(६) स.सा. १७२-निश्चय नयाश्रित मुनि मोक्ष प्राप्त करते हैं....

जान मोक्ष अधिकार शीघ्र ही नष्ट करूँ विष-कुम्भ-विभाव।
आत्म स्वरूप प्रकाशित करके प्रकटाऊँ परिपूर्ण स्वभाव॥
शुद्ध आत्मा ग्रहण करूँ मैं सर्व बंध का कर छेदन।
निशंकित होकर पाऊँगा मुक्ति शिला का सिंहासन॥
सर्व विशुद्ध ज्ञान का है अधिकार अपूर्व अमूल्य महान।
पर कर्तृत्व नष्ट हो जाता होता शिव पथ पर अभियान॥
कर्म फलों को मूढ़ भोगता ज्ञानी उनका ज्ञाता है।
इसीलिये अज्ञानी दुख पाता ज्ञानी सुख पाता है॥
भाव भासना नौ अधिकारों से कर निज में वास करुँ।
७''मिच्छत्तं अविरमणं कसाय जोग'' की सत्ता नाश करूँ॥
कुन्दकुन्द ने समयसार मन्दिर का किया दिव्य निर्माण।
वीतराग सर्वज्ञ देव की दिव्य-ध्वनि का इसमें ज्ञान॥
सर्व चार सौ पन्द्रह गाथाएं प्राकृत भाषा में जान।
सारभूत निज समयसार को ही अनुभव लूँ भव्य महान॥
अमृतचन्द्राचार्य देव ने आत्मख्याति टीका लिखकर।
कलश चढ़ाये दो सौ अठहत्तर स्वर्णिम अनुपम सुन्दर॥
श्री जयसेनाचार्य स्वामी की सरस तात्पर्यवृत्ति टीका।
ऋषि मुनि विद्वानों ने लिक्खा वर्णन समयसार जी का॥
ज्ञानी ध्यानी मुनियों ने भी तोरण द्वार सजाये हैं।
समयसार के मधुर गीत गा वन्दनवार चढ़ाये हैं॥
भिन्न-भिन्न भाषाओं में इसके अनुवाद हुए सुन्दर।
काव्य अनेकों लिखे गये हैं समयसारजी पर मनहर॥

(७) स.सा. १६४-मिथ्यात्व अविरति कषाय योग से आश्रव है।

श्री कानजी स्वामी ने भी करके समयसार प्रवचन।
समयसार मन्दिर पर सविनय हर्षित किया ध्वजारोहण॥
समयसार पढ़ सम्यक्दर्शन ज्ञान चरित्र प्रगटाऊँगा।
८''तिब्बं मंद सहावं'' क्षयकर वीतराग पद पाऊँगा॥
पंच परावर्तन अभाव कर सिद्ध लोक में जाऊँगा।
काल लब्धि आई है मेरी परम मोक्ष पद पाऊँगा॥
भक्ति भाव से समयसार की मैंने पूजन की है देव।
कारण समयसार की महिमा उरमें जाग उठी स्वयमेव॥
नमः समयसाराय स्वानुभाव ज्ञान चेतनामयी परम।
एक शुद्ध टंकोत्कीर्ण, चिन्मात्र पूर्ण चिद्रुप स्वयम्॥
नय पक्षों से रहित आत्मा ही है समयसार भगवान।
समयसार ही सम्यक्दर्शन समयसार ही सम्यक्ज्ञान॥

ॐ ह्रीं श्री परमागम समयसाराय अनर्घपद प्राप्तये जयमाला पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

समयसार के भाव को जो लेते उर धार।
निज अनुभव को प्राप्तकर हो जाते भव पार॥

॥ इत्याशीर्वादः॥

जो मनुष्य परिग्रह रहित तथा ज्ञान-ध्यान-तप में लीन गुरुओं को नहीं मानते हैं, उनकी उपासना, भक्ति नहीं करते हैं; उन पुरुषों के अंतरंग में अज्ञानरूपी अंधकार सदा विद्यमान रहता है। इसलिए सूर्य का उदय होने पर भी अन्धे ही बने रहते हैं; अतः भव्य जीवों को चाहिए कि वे अज्ञानरूपी अन्धकार को नाश करने के लिए गुरुओं की सेवा करें।

-उपासक संस्कार गाथा-19
श्री पद्मनन्दि आचार्य

(८) स.सा. २८८-बन्धन के तीव्र मन्द स्वभाव को....

श्री सप्तऋषि पूजन

स्थापना (छप्पय)

प्रथम नाम श्रीमन्व दुतिय स्वरमन्व ऋषीवर।
तृतीय मुनि श्री निचय सर्व सुन्दर चौथो वर॥
पंचम श्री जयवान विनयलालस षष्ठम भनि।
सप्तम जय मित्राख्य सर्व चारित्र-धाम गनि॥

(दोहा)

ये सातों चारण-ऋद्धि-धर, करूँ तास पद थापना।
में पूजूँ मन वचन काय करि, जो सुख चाहूँ आपना॥

ॐ ह्रीं श्री मन्वादिचारणर्द्धिधर सप्तर्षीश्वराः ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री मन्वादिचारणर्द्धिधर सप्तर्षीश्वराः ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्री मन्वादिचारणर्द्धिधर सप्तर्षीश्वराः ! अत्र मम सिन्नहितो भव भव वषट्।

(हरिगीतिका)

शुभ-तीर्थ-उद्भव-जल अनूपम, मिष्ट शीतल लायकैं।
भव-तृषा-कंद-निकंद-कारण, शुद्ध घट भरवायकैं॥
मन्वादि चारण-ऋद्धि-धारक, मुनिनकी पूजा करूँ।
ता करें पातक हरें सारे, सकल आनन्द विस्तरूँ॥

ॐ ह्रीं श्री मन्व-स्वरमन्व-निचय-सर्वसुन्दर-जयवान-विनयलालस-जयमित्राख्य चारणद्धिभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीखण्ड कदलीनन्द केशर, मन्द-मन्द घिसायकैं।
तसु गन्ध प्रसरित दिग-दिगन्तर, भर कटोरी लायकैं॥ मन्वादि. ॥

ॐ ह्रीं श्री मन्वादिचारणसप्तर्षिभ्यो संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अति धवल अक्षत खण्ड-वर्जित, मिष्ट राजत भोग के।
कलधौत-थारा भरत सुन्दर, चुनित शुभ उपयोग के॥

मन्वादि चारण-ऋद्धि-धारक, मुनिनकी पूजा करूँ।
ता करें पातक हरें सारे, सकल आनन्द विस्तरूँ॥

ॐ ह्रीं श्री मन्वादिचारणसप्तर्षिभ्यो अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

बहु-वर्ण सुवरण-सुमन आछै, अमल कमल गुलाब के।
केतकी चंपा चारु मरुआ, चुने निज कर चावके॥ मन्वादि. ॥

ॐ ह्रीं श्री मन्वादिचारणसप्तर्षिभ्यो कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पकवान नाना भाँति चातुर, रचित शुद्ध नये-नये।
सदमिष्ट लाडू आदि भर बहु, पुरट के थारा लये॥ मन्वादि. ॥

ॐ ह्रीं श्री मन्वादिचारणसप्तर्षिभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कलधौत-दीपक जड़ित नाना, भरित गोघृत-सारसों।
अतिज्वलित जग-मग ज्योति जाकी, तिमिर नाशन हारसों॥ मन्वादि. ॥

ॐ ह्रीं श्री मन्वादिचारणसप्तर्षिभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दिक्-चक्र गन्धित होत जाकर, धूप दश अंगी कही।
सो लाय मन-वच-काय शुद्ध, लगाय कर खेहूँ सही॥ मन्वादि. ॥

ॐ ह्रीं श्री मन्वादिचारणसप्तर्षिभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

वर दाख खारक अमित प्यारे, मिष्ट चुष्ट चुनायकैं।
द्रावडी दाडिम चारु पुंगी, थाल भर-भर लायकैं॥ मन्वादि. ॥

ॐ ह्रीं श्री मन्वादिचारणसप्तर्षिभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गन्ध अक्षत पुष्प चरुवर, दीप धूप सु लावना।
फल ललित आठौं द्रव्य-मिश्रित, अर्घ्य कीजे पावना॥ मन्वादि. ॥

ॐ ह्रीं श्री मन्वादिचारणसप्तर्षिभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(घत्ता)

वन्दूँ ऋषिराजा, धर्म-जहाजा, निज-पर-काजा करत भले।
करुणा के धारी, गगन-विहारी दुःख-अपहारी भरम दले॥

काटत जम-फन्दा, भवि-जन वृन्दा, करत अनन्दा चरणन में।
जो पूजैं ध्यावैं, मंगल गावैं, फेर न आवैं भव-वन में॥

(पद्धरी छन्द)

जय श्रीमनु मुनिराजामहन्त, त्रस थावर की रक्षा करन्त।
जय मिथ्या-तम-नाशक पतंग, करुणा रस-पूरित अंग-अंग॥
जय श्रीस्वरमनु अकलंकरूप, पद-सेव करत नित अमर-भूप।
जय पंच अक्ष जीते महान, तप तपत देह कंचन-समान॥
जय निचय सप्त तत्वार्थ भास, तप-रमातनों तन में प्रकाश।
जय विषय-रोध सम्बोध भान, परणति के नाशन अचल ध्यान॥
जय जयहिं सर्वसुन्दर दयाल, लखि इन्द्रजालवत जगत-जाल।
जय तृष्णाहारी रमण राम, निज-परणति में पायो विराम॥
जय आनन्दघन कल्याणरूप, कल्याण करत सबकौ अनूप।
जय मद-नाशन जयवानदेव, निरमद विरचित सब करत सेव॥
जय जयहिं विनय लालस अमान, सब शत्रु मित्र जानत समान।
जय कृशित-काय तप के प्रभाव, छवि छटा उड़ति आनन्द दाय॥
जय मित्र सकल जग के सुमित्र, अनगिनत अधम कीने पवित्र।
जय चन्द्र-वदन राजीव नैन, कबहूँ विकथा बोलत न बैन॥
जय सातों मुनिवर एक संग, नित गगन-गमन करते अभंग।
जय आये मथुरापुर मँझार, तहँ मरी रोग को अति प्रचार॥
जय-जय तिन चरणनि के प्रसाद, सब मरी देवकृत भई वाद।
जय लोक करे निर्भय समस्त, हम नमत सदा नित जोड़ हस्त॥
जय ग्रीष्म-ऋतु पर्वत मंझार, नित करत आतापन योगसार।
जय तृषा-परिषह करत जेर, कहूँ रंच चलत नहिं मन सुमेर॥
जय मूल अठाइस गुणनधार, तप उग्र तपत आनन्दकार।

जय वर्षा-ऋतु में वृक्ष तीर, तहं अति शीतल झेलत समीर॥
जय शीतकाल चौपट मंझार, कै नदि सरोवर तट विचार।
जय निवासत ध्यानारूढ़ होय, रंचक नहीं भटकत रोम कोय॥
जय मृतकासन व्रजासनीय, गौदूहन इत्यादिक गनीय।
जय आसन नाना भांति धार, उपसर्ग सहत ममता निवार॥
जय जपत तिहारो नाम कोय, लख पुत्र पौत्र कुल वृद्धि होय।
जय भरे लक्ष अतिशय भण्डार, दारिद्रतनो दुःख होय छार॥
जय चोर अग्नि डाकिन पिशाच, अरु ईति भीति सब नसत साँच।
जय तुम सुमरत सुख लहत लोक, सुर असुर नमत पद देत धोक॥

(रोला)

ये सातों मुनिराज, महातप लछमी धारी।
परमपूज्य पद धरैं सकल जग के हितकारी॥
जो मन वच तन शुद्ध होय सेवे ओ ध्यावै।
सो जन 'मनरंगलाल' अष्ट ऋद्धिनकौं पावै॥

(दोहा)

नमन करत चरनन परत, अहो गरीब निवाज।
पंच परावर्तननितैं, निरवारो ऋषिराज।

ॐ ह्रीं श्री मन्वादिचारणसप्तर्षिभ्यो अनर्घपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ पुष्पांजलिं क्षिपेत्: ॥

श्री कुन्दकुन्द आचार्य पूजन

कुन्द-कुन्द आचार्य देव के चरण कमल में करूँ नमन।
कुन्द-कुन्द आचार्य देव की वाणी के उर धरूँ सुमन॥
कुन्द-कुन्द आचार्य देव की भाव सहित करके पूजन।
निज स्वभाव के साधान द्वारा मोक्ष प्राप्ति का करूँ यतन॥
१''परिणामों बंधो परिणामो मोक्खो'' करूँ आत्म दर्शन।
सिद्ध स्वपद की प्राप्ति हेतु मैं निज स्वरूप में करूँ रमन॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्द-कुन्द आचार्य देव चरणाग्रेषु पुष्पांजलि क्षिपामि।

समयसार वैभव के जल से उर में उज्जवलता लाऊँ।
२''दंसण मूलोधम्मो'' सम्यक्दर्शन निज में प्रगटाऊँ॥
कुन्द-कुन्द आचार्य देव के चरण पूज निज को ध्याऊँ।
सब सिद्धों को वन्दन कर ध्रुव अचल सु अनुपमगति पाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्द-कुन्द आचार्य देवाय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

समयसार वैभव चन्दन से निज सुगन्ध को विकसाऊँ।
३''वत्थु सहावोधम्मो'' सम्यक्दर्शन सूर्य को प्रगटाऊँ॥ कुन्द. ॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्द आचार्य देवाय संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

समयसार वैभव के उत्तम अक्षत गुण निज में लाऊँ।
४''चारित्त खलुधम्मो'' सम्यक्चारित रथ पर चढ़ जाऊँ॥ कुन्द. ॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्द-कुन्द आचार्य देवाय अक्षपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

---

(१) परिणामों से वंध और परिणामों से मोक्ष होता है।
(२) अष्टपाहुड़ २-धर्म का मूल सम्यक्दर्शन है।
(३) वस्तु स्वभाव ही धर्म है।
(४) प्रवचन सार ७-चरित्र ही धर्म है।

समयसार वैभव के पावन पुष्पों में मैं रम जाऊँ।
५''दाणं पूजा मुख्खयसावधायधम्मो'' शीस्वगुण पाऊँ॥ कुन्द. ॥
ॐ ह्रीं श्री कुन्द-कुन्द आचार्य देवाय कामबाण विध्वंसना पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।
समसार वैभव के मनभावन नैवेद्य हृदय लाऊँ।
६''जो जाणदि अरिहंत'' निजज्ञायक स्वभाव आश्रय पाऊँ ॥ कुन्द. ॥
ॐ ह्रीं श्री कुन्द-कुन्द आचार्य देवाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।
समयसार वैभव के ज्योतिर्मय दीपक उर में लाऊँ।
७''दसणं भट्ठा-भट्ठा'' मिथ्या मोह तिमिर हर सुख पाऊँ॥ कुन्द. ॥
ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्द आचार्य देवाय मोहान्धकार विनाशनाय दींप निर्वपामीति स्वाहा।
समयसार वैभव का शुचिमय ध्यान धूप उर में ध्याऊँ।
८''ववहारोभ्भूयत्थो'' निश्चय आश्रित हो शिव पद पाऊँ॥ कुन्द. ॥
ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्द आचार्य देवाय अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।
समयसार वैभव के भव्य अपूर्व मनोरम फल पाऊँ।
९''णियमं मोक्ख उवायो'' द्वारा महामोक्ष पद प्रगटाऊँ॥ कुन्द. ॥
ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्द आचार्य देवायं महामोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।
समयसार वैभव का निर्मल भाव अर्घ उर में लाऊँ।
१०''अहिमिक्कोखलुसुद्धो'' चिन्तनकर अनर्घ पद को पाऊँ॥ कुन्द. ॥
ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्द आचार्य देवायं अनघ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

---

(५) रयणसार १०-श्रावक धर्म में दान पूजा मुख्य है।
(६) प्रवचन सार ८०- जो अरहन्त को..... जानता है।
(७) अष्ट पाहुड़ ३-जो पुरुष दर्शन से भ्रष्ट है, वे भ्ररूट है।
(८) समयसार ११-व्यवहार नय अभूतार्थ है।
(९) नियमसार-६ (रत्नत्रयरूप) नियम मोक्ष का उपाय है।
(१०) समयसार १८, ७३-मैं निश्चय से एक हूँ, शुद्ध हूँ।

जयमाला

मंगलमय भगवान वीर प्रभु मंगलमय गौतम गणधर।
मंगलमय श्री कुन्द-कुन्द मुनि, मंगल जैन धर्म सुखकर॥
कन्नड प्रान्त बड़ा दक्षिण में कोण्डकुण्ड था ग्राम अपूर्व।
कुन्दकुन्द ने जन्म लिया था दो सहस्त्र वर्षों के पूर्व॥
ग्यारह वर्ष आयु थी जब तुमने स्वामी वैराग्य लिया।
श्रेष्ठ महाव्रत धारण करके मुनिपद का सौभाग्य लिया॥
एक दिवस जंगल में बैठे घोर तपस्या में थे लीन।
कंचन सी काया तपती थी आत्म ध्यान में थे तल्लीन॥
उसी समय इक पूर्व जन्म का मित्र देव व्यंतर आया।
देख तपस्या रत भू पर आ श्रद्धा से मस्तक नाया॥
ध्यान पूर्ण होने पर मुनि ने जब अपनी आँखें खोली।
देखा देव पास बैठा है बोले तब हित मित बोली॥
धर्म वृद्धि हो, धर्म वृद्धि हो, धर्म वृद्धि हो तुम हो कौन।
हर्षित पुलकित गद् गद् होकर तोड़ा तब व्यंतर ने मौन॥
नमस्कार कर भक्ति भाव से पूर्व जन्म का दे परिचय।
पिछले भव में परम मित्र थे क्षमा करे मेरी अविनय॥
सीमंधर स्वामी के दर्शन को विदेह भू जाता हूँ।
यही प्रार्थना चले आप भी नम्र विनय मन लाता हूँ॥
चिर इच्छा साकार हुई मुनिवर ने स्वर्ण समय जाना।
बोले श्री जिनवाणी सुनकर मुझे लौटे भारत आना॥
मुनि को साथ लिया उसने आकाश मार्ग से गमन किया।
तीर्थङ्कर सर्वज्ञ देव को जा विदेह में नमन किया।।

सीमंधर के समवसरण को देखा मन में हर्षाये।
जन्म जन्म के पातक क्षय कर अनुपम ज्ञान रत्न पाये।।
सीमंधर प्रभु के चरणों में झुककर किया विनय वन्दन।
प्रभु की शांतमधुर छवि लखकर धन्य हुए भारत नन्दन।।
प्रभु से प्रश्न हुआ लघु मुनिवर कौन कहाँ से आये हैं।
खिरी दिव्य ध्वनि कुन्दकुन्द मुनि भरतक्षेत्र से आये हैं।।
सीमंधर ने दिव्य ध्वनि में कुन्दकुन्द का नाम लिया।
भवभव के अघ नष्ट हो गये मुनि ने विनय प्रणाम किया।।
विनयी होकर कुन्दकुन्द ने जिनवाणी का पान किया।
अष्ट दिवस रह समवसरण में द्वादशांग का ज्ञान लिया।।
अक्षयज्ञान उदधि मन में भर और हृदय में प्रभु का नाम।
सीमंधर तीर्थङ्कर प्रभु को करके बारम्बार प्रणाम।।
फिर विदेह से चले और नभ पथ से भारत में आये।
तीर्थङ्कर वाणी का सागर मन मन्दिर में लहराये।।
जो सुनकर आये जिनवाणी फिर उसको लिपि रूप दिया।
जगत जीव कल्याण करें निज, ऐसा शास्त्र स्वरूप दिया।।
राग मात्र को हेय बताया उपादेय निज शुद्धातम।
भाव शुभाशुभ का अभाव कर होता चेतन परमातम।।
समयसार में निश्चय नय का पावनमय सन्देश भरा।
श्री पंचास्तिकाय को रचकर द्रव्य तत्त्व उपदेश भरा।।
प्रवचनसार बनाया तुमने भेदज्ञान को बतलाया।
मूलाचार लिखा मुनिजन हित साधु मार्ग को दर्शाया।।
नियमसार की रचना अनुपम रयणसार गूंथा चितलाय।
लघु समायिक पाठ बनाया लिखा सिद्ध प्राभृत सुखदाय।।

श्री अष्टपाहुड़ षट्प्राभृत द्वादशानुप्रेक्षा के बोल।
चौरासी पाहुड़ लिक्खे जो ज्ञात नहीं हमको अनमोल।।
ताड़ पत्र पर लिखे ग्रन्थ तब सफल हुई चिर अभिलाषा।
जन जन की वाणी कल्याणी धन्य हुई प्राकृत भाषा।।
जीवों के प्रति करुणा जागी मोक्ष मार्ग उपदेश दिया।
और तपश्या भूमि बनाकर गिरि कुन्द्रादि पवित्र किया।।
अमृतचन्द्राचार्य देव की टीका आत्मख्याति विख्यात।
पद्मप्रभ मलधारी देवकी टीका नियमसार प्रख्यात।।
श्री जयसेनाचार्य रचित तात्पर्यवृत्ति टीका पावन।
श्री कानजीस्वामी के भी अनुपम समयसार प्रवचन।।
पद्मनन्दि गुरु बक्रग्रीव। मुनि एलाचार्य आपके नाम।
गृद्धपृच्छ आचार्य यतीश्वर कुन्दकुन्द हे गुण के धाम।।
हे आचार्य आपके गुण वर्णन करने की शक्ति नहीं।
पथ पर चलें आपके ऐसी भी तो अभी विरक्ति नहीं।।
भक्ति विनय के सुमन आपके चरणों में अर्पित हैं देव।
भव्य भावना यही एक दिन मैं सर्वज्ञ बनूँ स्वयमेव।।
११''जीवादी सद्दहणं सम्मत्तं'' पाऊँ प्रभु करूँ प्रणाम।
इन चरणों की पूजन का फल पाऊँ सिद्धपुरी का धाम।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्द आचार्य देवाय अनर्घपद प्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कुन्दकुन्द मुनि के वचन भाव सहित उर धार।
निज आतम को ध्यावते पाते ज्ञान अपार॥

॥ इत्याशीर्वादः ॥

(११) समय-सार १५५ जीवादि पदार्थों का श्रद्धान सम्यक्दर्शन है।

श्री समस्त सिद्धक्षेत्र पूजन

मध्यलोक में ढ़ाई द्वीप के सिद्ध क्षेत्रों को वन्दन।
जम्बूद्वीप सुभरत क्षेत्र के तीर्थक्षेत्रों को वन्दन॥
श्री कैलाश आदि निर्वाण भूमियों को मैं करूँ नमन।
श्रद्धा भक्ति विनयपूर्वक हर्षित हो करता पूजन॥
शुद्ध भावना यही हृदय में मैं भी सिद्ध बनूँ भगवन।
रत्नत्रय पथ पर चलकर मैं नाशूँ चहुँ गति का क्रन्दन॥

ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्धक्षेत्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्धक्षेत्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्धक्षेत्र ! अत्र मम सिन्नहितो भव भव वषट्।

ज्ञान स्वभावी निर्मल जल का सागर उर में लहराता।
फिर भी भव सागर भंवरों में जन्म मरण के दुःख पाता॥
श्री सिद्धक्षेत्रों का दर्शन पूजन वन्दन सुखकारी।
जो स्वभाव का आश्रय लेता उसको है भव दुख हारी ॥

ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्धक्षेत्र ! जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान स्वभावी शीतलतामय चंदन निज में भरा अपार।
फिर भी भव दावानल में जल बहु दुख पाया बारम्बार॥ श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्धक्षेत्र ! संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान स्वभावी उज्जवल अक्षत पुंज हृदय में भरे अटूट।
फिर भी अविनाशी अखंड होकर भी पा न सका निज कूट॥ श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्धक्षेत्र! अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान स्वभावी दिव्य सुगन्धित पुष्पों का निज में उपवन।
फिर भी भव माया में पड़ निष्काम न बन पाया भगवन्॥ श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्धक्षेत्र! कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान स्वभावी सरस मनोरम तृप्ति पूर्ण नैवेद्य स्वयम्।
फिर भी क्षुधारोग से व्याकुल तृष्णा हुई न तिलभर कम॥ श्री. ॥
ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्धक्षेत्र! क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान स्वभावी स्व पर प्रकाशी केवलरवि निज में अनुपम।
फिर भी अघमय अंधियारे में भटका मिटा न मिथ्यातम॥ श्री. ॥
ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्धक्षेत्र! मोहान्धकार विनाशकाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान स्वभावी सहजानंदी विमल धूप से हूँ परिपूर्ण।
फिर भी प्रभो नहीं कर पाया अब तक अष्टकर्म अरिचूर्ण॥ श्री. ॥
ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्धक्षेत्र! अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान स्वभावी शिवफलधारी अविकारी हूँ सिद्ध स्वरूप।
फिर भी भव अटवी में अटका होकर मैं त्रिभुवन का भूप॥ श्री. ॥
ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्धक्षेत्र! मोक्षफल प्राप्त्ये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान स्वभावी चिदानन्द चैतन्य अनन्त गुणों से पूर।
फिर भी पद अनर्घ ना पाया रहकर निज परिणति से दूर॥ श्री. ॥
ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्धक्षेत्र! अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

तीर्थङ्कर ऋषि आदि मुनि गये जहाँ निर्वाण।
उन क्षेत्रों को वंद्यकर करूँ आत्म कल्याण।

जम्बूद्वीप धातकी खण्ड अरु पुष्करार्द्ध में क्षेत्र विदेह।
पंच भरत अरु पंच ऐरावत तीर्थ क्षेत्र बन्दूँ धर नेह॥
तीन लोक के सकल तीर्थ निर्वाण क्षेत्र सविनय वन्दूँ।
सिद्ध अनन्तानन्त विराजित सिद्धशिला नित प्रति वन्दूँ॥
अष्टापद कैलाशशिखर पर ऋषभदेव के पद वन्दूँ।
बाली महाबाली मुनि नागकुमार आदि मुनिवर वन्दूँ॥
श्री सम्मेदशिखर पर्वत पर बीस तीर्थङ्कर वन्दूँ।

अजितनाथ सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्म प्रभु को वन्दूँ॥
श्री सुपार्श्व चन्द्रप्रभ स्वामी, पुष्पदन्त, शीतल वन्दूँ।
प्रभु श्रेयान्स विमल, अनन्त जिन, धर्म शान्ति, कुन्थु वन्दूँ॥
श्री अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमिजिन, पार्श्वनाथ प्रभु को वन्दूँ।
मुनि अनन्त निर्वाण गये जो, उनके चरणाम्बुज वन्दूँ॥
चम्पापुर में वासुपूज्य तीर्थङ्कर को सादर वन्दूँ।
श्री मंदारगिरि से मुक्त हुए मुनियों के पद वन्दूँ॥
श्री गिरनार नेमि प्रभु शंबु प्रदुम्न अनिरुद्ध आदि वन्दूँ।
कोटि बहत्तर सात शतक मुनि मुक्त हुए उनको वन्दूँ॥
पावापुर में महावीर अन्तिम तीर्थङ्कर को वन्दूँ।
क्षेत्र गुणावा गौत्तम स्वामी के पद कमलों को वन्दूँ॥
तुन्गीगिरी श्री रामचन्द्र, हनुमान गवय, गवाक्ष वन्दूँ।
महानील, सुग्रीव, नील मुनि निन्यानवे कोटि वन्दूँ॥
शत्रुन्जय पर आठ कोटि मुनियों के चरणाम्बुज वन्दूँ।
भीम युधिष्ठिर अर्जुन पांडव और द्रविड़ राजा वन्दूँ॥
श्री गजपंथ शैल पर मैं बलभद्र सप्त के पद वन्दूँ।
आठ कोटि मुनि मुक्ति गये हैं भाव सहित उनको वन्दूँ॥
सोनागिरि पर नंग-अनंग कुमार आदि मुनि को वन्दूँ।
साड़े पाँच कोटि ऋषियों की यह निर्वाण भूमि वन्दूँ॥
रेवा तट पर रावण के सुत आदि मुनिश्वर को वन्दूँ।
साड़े पाँच कोटि मुनियों को सादर सविनय अभिनन्दूँ॥
पावागढ़ पर साड़े पाँच कोटि मुनियों के पद वन्दूँ।
रामचन्द्र सुत लव, मदनांकुश, लाड़देव के नृप वन्दूँ॥

तारंगागिरि साड़ेतीन कोटि मुनियों को मैं वन्दूँ।
श्री वरदत्तराय मुनिसागरदत्त आदि पद अभिनन्दूँ॥
श्री सिद्धवरकूट सनत, मघवा चक्री दोनों वन्दूँ।
कामदेव दस आदि ऋषिश्वर साड़ेतीन कोटि वन्दूँ॥
मुक्तागिरि से साड़े तीन कोटि मुनि मोक्ष गये वन्दूँ।
पावागिरि पर सुवर्णभद्र आदिक चारों मुनि को वन्दूँ॥
कोटि शिला से एक कोटि मुनि सिद्ध हुए उनको वन्दूँ।
देश कलिंग यशोधर नृप के पाँच शतक सुत मुनि वन्दूँ॥
श्री चूलगिरि इन्द्रजीत अरु कुम्भकरण ऋषिवर वन्दूँ।
कुन्थलगिरि पर श्री देशभूषण कुलभूषण मुनि वन्दूँ॥
रेशंदीगिरि वरदत्तादि पंच ऋषियों को मैं वन्दूँ।
द्रोणागिरि पर गुरुदत्तादिक मुनियों को सविनय वन्दूँ॥
पंच पहाड़ी राजगृही से मुक्त हुए मुनिवर वन्दूँ।
चरम केवली जम्बूस्वामी मथुरा मुक्ति भूमि वन्दूँ॥
पटना से श्री सेठ सुदर्शन मुक्त हुए उनको वन्दूँ।
कुण्डलपुर से मोक्ष गये श्रीधर स्वामी के पद वन्दूँ॥
पोदनपुर से सिद्ध हुए श्री बाहुबली स्वामी वन्दूँ।
भरत आदि चक्रेश्वर मुनियों की निर्वाण धरा वन्दूँ॥
श्रवण, द्रोण, वैभार, बलाहक, विंध्य, सह्य, पर्वत वन्दूँ।
प्रवर कुण्डली, विपुलाचल, हिमवान क्षेत्रों को वन्दूँ॥
तीर्थंकर के सभी गणधरों की निर्वाण भूमि वन्दूँ।
वृषभसेन आदिक गौतम, चौदह सौ उनसठ ऋषि वन्दूँ॥
कामदेव बलभद्र चक्री जो मुक्त हुए उनको वन्दूँ।

जल थल नभ से सिद्ध हुए उपसर्ग केवली सब वन्दूँ॥
ज्ञात और अज्ञात सभी निर्वाण भूमियों को वन्दूँ।
भूत भविष्यत् वर्तमान की सिद्ध भूमियों को वन्दूँ॥
मन वच काय त्रियोग पूर्वक सर्व सिद्ध भगवन वन्दूँ।
सिद्ध स्वपद की प्राप्ति हेतु मैं पाँचों परमेष्ठी वन्दूँ॥
सिद्ध क्षेत्रों के दर्शन कर निज स्वरूप दर्शन करलूँ।
शुद्ध चेतना सिंधु नीर पी मोक्ष लक्ष्मी को वर लूँ॥
सब तीर्थों की यात्रा करके आत्मतीर्थ की ओर चलूँ।
अजर-अमर अविकल अविनाशी सिद्ध स्वपद की ओर ढलूँ॥
भाव शुभाशुभ का अभाव कर शुद्धआत्म का ध्यान करूँ।
राग-द्वेष का सर्वनाश कर मंगलमय निर्वाण वरूँ॥

ॐ ह्रीं श्री समस्त सिद्धक्षेत्रेभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री निर्वाण क्षेत्र का पूजन वंदन जो जन करते हैं।
समकित का पावन वैभव पा मुक्ति वधू को वरते हैं।

॥ इत्याशीर्वादः ॥

जो जीव पुण्य और पुण्य के फल के गीत गाता है वह वीतराग का भक्त नहीं हो सकता। पुण्य और पुण्य के फल में लाभ बुद्धि वाला अर्थात् स्वभाव की लाभ बुद्धि के अभाव वाला वस्तुतः भगवान के गीत गा ही नहीं सकता।

-पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी
जिन स्तवन प्रवचन

श्री तीर्थराज सम्मेदशिखर निर्वाणक्षेत्र पूजन

तीर्थराज सम्मेदाचल जय शाश्वत तीर्थ क्षेत्र जय जय।
मुनि अनंत निर्वाण गये हैं पाया सिद्ध स्वपद शिवमय॥
अजितनाथ, संभव, अभिनन्दन, सुमति, पद्म प्रभु मंगलमय।
श्री सुपार्श्व चन्दा प्रभु स्वामी पुष्पदन्त शीतल गुणमय॥
जय श्रेयान्स विमल, अनंत प्रभु धर्म, शान्ति जिन कुन्थसदय।
अरह, मल्लि, मुनिसुव्रत स्वामी नमिजिन, पार्श्वनाथ जय जय॥
बीस जिनेश्वर मोक्ष पधारे इस पर्वत से जय जय जय।
महिमा अपरम्पार विश्व में तीर्थराज की जय जय जय॥

ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अगणित सागर पी डाले पर प्यास न कभी बुझा पाया।
अनुपम सुखमय निर्मल शीतल समता जल पीने आया॥
तीर्थराज सम्मेदशिखर की पूजन कर उर में हर्षाया।
बीस तीर्थङ्कर की यह निर्वाण भूमि लख सुख पाया॥

ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

पर भावों के संतापों में उलझ उलझ अति दुःख पाया।
ज्ञानानन्दी शुद्ध स्वभावी निज चंदन लेने आया॥ तीर्थराज॥

ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो संसार ताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

निज चैतन्यरूप को भूला पर ममत्व में भरमाया।
अक्षय चेतन पद पाने को चरण शरण में मैं आया॥ तीर्थराज॥

ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पर द्रव्यों से राग-हटाने का पुरुषार्थ न कर पाया।
शील स्वभाव शान्तपाने को काम नाश करने आया॥ तीर्थराज॥

ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तीन लोक का अन्न प्राप्तकर भूख न कभी मिटा पाया।
क्षुधाव्याधि का रागनशाने निज स्वभाव पाने आया॥ तीर्थराज॥
ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो क्षुधारोग विनाशना नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।
मोह तिमिर के कारण अब तक सम्यक्ज्ञान नहीं पाया।
आत्मदीप की ज्योति जगाने भेदज्ञान करने आया॥ तीर्थराज॥
ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।
आत्मध्यान बिन भव की भीषण ज्वाला में जल दुःख पाया।
अष्टकर्म सम्पूर्ण जलाने ध्यान अग्नि पाने आया॥ तीर्थराज॥
ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।
पुण्य फलों में तीव्र राग कर सदा पाप ही उपजाया।
पाप-पुण्य से रहित शुद्ध परमातम पद पाने आया॥ तीर्थराज॥
ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।
है अनादि भव रोग न इसकी औषधि अब तक कर पाया।
निज अनर्घ पद पाने का अब तो अपूर्व अवसर आया॥ तीर्थराज॥
ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

सम्मेदाचल शीश से तीर्थङ्कर मुनिराज।
सिद्ध हुए सम श्रेणी में ऊपर रहे विराज॥
प्रभु चरणाम्बुज पूज कर धन्य हुआ मैं आज।
भाव सहित वन्दन करूँ निज शिव सुख के काज॥
जय जय शाश्वत सम्मेदाचल तीर्थ विश्व में श्रेष्ठ प्रधान।
भूत भविष्यत् वर्तमान के तीर्थङ्कर पाते निर्वाण॥
परम तपस्या भूमि सुपावन है अनन्त मुनिराजों की।
सुपवित्र निर्वाण धरा है यह महान जिनराजों की॥

लक्ष लक्ष वृक्षों की हरियाली से पर्वत शोभित हैं।
वातावरण शान्तमय सुन्दर लख कर यह जग मोहित है॥
शीतल अरु गन्धर्व सलिल निर्झर जल धारायें न्यारी।
भाँति-भाँति के पक्षीगण करते हैं कलरव मनहारी॥
पर्वत पारसनाथ मनोरम यह सम्मेदशिखर अनुपम।
भाव सहित जो वन्दन करते उनका क्षय होता भ्रमतम॥
बीस टोंक पर बीस तीर्थङ्कर के चरण चिह्न अभिराम।
शेष टोंक है कुन्थुनाथ की प्रातः रवि वन्दन करता।
अन्तिम पार्श्वनाथ प्रभु की है संध्या सूर्य नमन करता॥
कूट सिद्धवर अजितनाथ का धवलकूट सुमतिजिनका।
अभिनन्दन आनन्दकूट जय अविचलकूट सुमतिजिन का॥
मोहनकूट पद्मप्रभु का है प्रभु सुपार्श्व का प्रभासकूट।
ललितकूट चंदाप्रभु स्वामी पुष्पदन्त जिन सुप्रभुकूट॥
विद्युतकूट श्री शीतलजिन श्रेयान्स का संकुलकूट।
श्री सुवीरकुलकूट विमलप्रभुनाथ अनन्त स्वयंभूकूट॥
जय प्रभु धर्म सुदत्तकूट जय शांन्ति जिनेश कुन्दप्रभुकूट।
कुटज्ञानधर कुन्थनाथ का अरहनाथ का नाटक कूट॥
संवरकूट मल्लि जिनवर का, निर्जरकूट मुनि सुव्रतनाथ।
कूट मित्रधर श्री नमि जिनका स्वर्णभद्र प्रभु पारसनाथ॥
सर्व सिद्धवर कूट आदि प्रभु वासुपूज्य मन्दारगिरि।
उर्जयन्त है कूट नेमि प्रभु सन्मति का महावीर श्री॥
चौबीसों तीर्थङ्कर प्रभु के गणधर स्वामी सिद्ध भगवान।
गणधर कूट भाव से पूजूँ मैं भी पाऊँ पद निर्वाण।
बीसकूट से बीस तीर्थङ्कर ने पाया पद मोक्ष महान।
इसी क्षेत्र से तो असंख्य मुनियों ने पाया है निर्वाण॥

भव्य गीत सम्यक्दर्शन का सहज सुनाई देता है।
रत्नत्रय की महिमा का फल यहाँ दिखाई देता है॥
सिद्ध क्षेत्र है तीर्थक्षेत्र हैं पुण्य क्षेत्र है अति पावन।
भव्य दिव्य पर्वतमालायें ऊँची नीची मन भावन॥
मधुवन में मन्दिर अनेक हैं भव्य विशाल मनोहारी।
वृषभादिक चौबीस जिनेश्वर की प्रतिमाएँ सुखकारी॥
नन्दीश्वर की सुन्दर रचना श्री बाहुबली के दर्शन।
ऊँचा मानस्तम्भ सुशोभित पार्श्वनाथ का समवसरण॥
पुण्योदय से इस पर्वत की सफल यात्रा हो जाये।
नरक और पशुगति का निश्चित बंध नहीं होने पाये॥
मैं सम्यक्त्व ग्रहण कर प्रभु कब तेरह विधि चारित्र धरूँ।
पंच महाव्रत धार साधु बन इस भू पर निर्भय विचरूँ॥
सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्र तप आराधना चार चितधार।
शुद्ध आत्मा अनुभव से नित प्रति हो स्वरूप साधना अपार॥
नित द्वादश भावना चिन्तवन करके दृढ़ वैराग्य धरूँ।
भेद ज्ञान कर पर परणति तज निज परणति में रमण करूँ॥
इसी क्षेत्र से महामोक्ष फल सिद्ध स्वपद को मैं पाऊँ।
अष्टकर्म को नष्ट करूँ मैं परम शुद्ध प्रभु बन जाऊँ॥
मन वच काया शुद्धि पूर्वक भाव सहित की है पूजन।
ये संसार भ्रमण मिट जाए हे प्रभु! पाऊँ मुक्ति गगन॥

ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो पूणार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री सम्मेदशिखर का दर्शन-पूजन जो जन करते हैं।
मुक्तिकन्त भगवंत सिद्ध बन भव सागर से तरते हैं॥

॥ इत्याशीर्वादः ॥

श्रीनिर्वाणक्षेत्र पूजन

(सोरठा)

परम पूज्य चौबीस, जिहँ-जिहँ थानक शिव गये।
सिद्धभूमि निश-दीस, मन-वच-तन पूजा करौं॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्राणि! अत्र अवतर अवतरत संवौषट् इति आह्वाननम्। ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्राणि! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्। ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्राणि! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(छन्द - गीता)

शुचि क्षीर-दधि-सम नीर निरमल, कनक झारी में भरौं।
संसार पार उतार स्वामी, जोर कर विनती करौं॥
सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलास कों।
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाणभूमि-निवास कों॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

केशर कपूर सुगन्ध चन्दन, सलिल शीतल विस्तरौं।
भव-ताप को सन्ताप मेटो, जोर कर विनती करौं॥ सम्मेद. ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतिनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः संसार ताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

मोती समान अखण्ड तन्दुल, अमल आनन्द धरि तरौं।
औगुन हरौ गुन करौ हमको, जोर कर विनती करौं॥ सम्मेद. ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ फूल-रास सुवास-वासित, खेद सब मन को हरौं।
दुःखधाम काम विनाश मेरो, जोर कर विनती करौं॥ सम्मेद. ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः कामवाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज अनेक प्रकार जोग, मनोग धरि भय परिहरौं।
यह भूख-दूखन टार प्रभुजी, जोर कर विनती करौं॥ सम्मेद. ॥
ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक प्रकाश उजास उज्ज्वल, तिमिरसेती नहिं डरौं।
संशय-विमोह-विभरम-तम हर, जोर कर विनती करौं॥ सम्मेद. ॥
ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ धूप परम अनूप पावन, भाव पावन आचरौं।
सब करम पुञ्ज जलाय दीज्यो, जोर कर विनती करौं॥ सम्मेद. ॥
ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बहु फल मँगाय चढ़ाय उत्तम, चार गतिसों निरवरौं।
निहचै मुकति-फल देहु मोको, जोर कर विनती करौं॥ सम्मेद. ॥
ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गन्ध अच्छत फूल चरु फल, दीप धूपायन धरौं।
'द्यानत' करो निरभय जगतसों, जोर कर विनती करौं॥ सम्मेद. ॥
ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(सोरठा)

श्री चौबीस जिनेश, गिरि कैलाशादिक नमों।
तीरथ महाप्रदेश, महापुरुष निरवाणतैं॥

(चौपाई १६ मात्रा)

नमों ऋषभ कैलासपहारं, नेमिनाथ गिरनार निहारं।
वासुपूज्य चम्पापुर वन्दौं, सन्मति पावापुर अभिनन्दौं॥

वन्दौं अजित अजित-पद दाता, वन्दौं सम्भव भवदु:ख घाता।
वन्दौं अभिनन्दन गणनायक, वन्दौं सुमति सुमति के दायक॥

वन्दौं पद्म मुकति-पद्माकर, वन्दौं सुपास आश-पासाहर।
वन्दौं चन्द्रप्रभ प्रभु चन्दा, वन्दौं सुविधि सुविधि-निधि कन्दा॥

वन्दौं शीतल अघ-तप-शीतल, वन्दौं श्रेयान्स श्रेयान्स महीतल।
वन्दौं विमल-विमल उपयोगी, वन्दौं अनन्त अनन्त सुखभोगी॥

वन्दौं धर्मधर्म-विस्तारा, वन्दौं शान्ति शान्ति मनधारा।
वन्दौं कुन्थु कुन्थु-रखवालं, वन्दौं अर अरि-हर गुणमालं॥

वन्दौं मल्लि काम-मल-चूरन, वन्दौं मुनिसुव्रत व्रत-पूरन।
वन्दौं नमि जिन नमित सुरासुर, वन्दौं पास पास-भ्रम-जगहर॥

बीसों सिद्धभूमि जा ऊपर, शिखर सम्मेद महागिरि भूपर।
एकबार वन्दै जो कोई, ताहि नरक-पशुगति नहिं होई॥

नरपति नृप सुर शक्र कहावै, तिहुँ जग भोग भोगि शिव पावै।
विघन-विनाशन मङ्गलकारी, गुण-विलास वन्दौं भव-तारी॥

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(घत्ता)

जो तीरथ जावै, पाप मिटावै, ध्यावै गावै, भगति करै।
ताको जस कहिये, सम्पति लहिये, गिरि के गुण को बुध उचरै॥

इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

निर्वाणकाण्ड (भाषा)

(दोहा)

वीतराग वन्दौं सदा, भावसहित सिर नाय।
कहूँ काण्ड निर्वाण की, भाषा सुगम बनाय॥

(चौपाई)

अष्टापद आदीश्वर स्वामी, वासुपूज्य चम्पापुर नामि।
नेमिनाथ स्वामी गिरनार, वन्दौं भाव भगति उर धार॥
चरम तीर्थङ्कर चरम-शरीर, पावापुरि स्वामी महावीर।
शिखरसम्मेद जिनेसुर बीस, भावसहित वन्दौं निश-दीस॥
वरदत्तराय रु इन्द्र मुनिन्द, सायरदत्त आदि गुणवृन्द।
नगर तारवर मुनि अठ कोड़ि, वन्दौं भावसहित कर जोड़ि॥
श्री गिरनार शिखर विख्यात, कोड़ि बहत्तर अरु सौ सात।
शम्भु प्रद्युम्न कुमार द्वै भाय, अनिरुध आदि नमूँ तसु पाय॥
रामचन्द्र के सुत द्वै वीर, लाडनरिन्द आदि गुणधीर।
पाँच कोड़ि मुनि मुक्ति मँझार, पावागिरि वन्दौं निरधार॥
पाण्डव तीन द्रविड़ राजान, आठ कोड़ि मुनि मुकति पयान।
श्री शत्रुञ्जयगिरि के सीस, भावसहित वन्दौं निश-दीश॥
जे बलभद्र मुकति में गये, आठ कोड़ि मुनि औरहू भये।
श्रीगजपन्थ शिखर सुविशाल, तिनके चरण नमूँ तिहुँ काल॥
राम हणू सुग्रीव सुडील, गव गवाख्य नील महानील।
कोड़ि निन्यानवें मुक्तिपयान, तुङ्गीगिरि वन्दौं धरि ध्यान॥
नङ्ग अनङ्ग कुमार सुजान, पाँच कोड़ि अरु अर्द्ध प्रमाण।
मुक्ति गये सोनागिरि शीश, ते वन्दौं त्रिभुवन पति ईश॥
रावण के सुत आदिकुमार, मुक्ति गये रेवा-तट सार।
कोटि पञ्च अरु लाख पचास, ते वन्दौं धरि परम हुलास॥

रेवानदी सिद्धवर कूट, पश्चिम दिशा देह जहँ छूट।
द्वै चक्री दश कामकुमार, उठकोड़ि वन्दौं भव पार॥
बड़वानी बड़नगर सुचङ्ग, दक्षिण दिशि गिरि चूल उतङ्ग।
इन्द्रजीत अरु कुम्भ जु कर्ण, ते वन्दौं भव-सागर तर्ण॥
सुवरणभद्र आदि मुनि चार, पावागिरि-वर शिखर मँझार।
चेलना नदी-तीर के पास, मुक्ति गये वन्दौं नित तास॥
फलहोड़ी बड़गाम अनूप, पश्चिम दिशा द्रोणगिररूप।
गुरुदत्तादि मुनीश्वर जहाँ, मुक्ति गए वन्दौं नित तहाँ॥
बाल महाबाल मुनि दोय, नागकुमार मिले त्रय होय।
श्री अष्टापद मुक्ति मँझार, ते वन्दौं नित सुरत संभार॥
अचलापुर की दिश ईसान, तहाँ मेंढ़गिरि नाम प्रधान।
साढ़े तीन कोड़ि मुनिराय, तिनके चरण नमूँ चित लाय॥
वंशस्थल वन के ढिंग होय, पश्चिम दिशा कुन्थुगिरि सोय।
कुलभूषण दिशिभूषण नाम, तिनके चरणनि करूँ प्रणाम॥
जसरथ राजा के सुत कहे, देश कलिंग पाँच सौ लहे।
कोटिशिला मुनि कोटि प्रमाण, वन्दन करूँ जोरि जुग पान॥
समवसरण श्री पार्श्व जिनन्द, रेसिन्दीगिरि नयनानन्द।
वरदत्तादि पञ्च ऋषिराज, ते वन्दौं नित धरम जिहाज॥
मथुरापुर पवित्र उद्यान, जम्बूस्वामी जी निर्वाण।
चरमकेवली पञ्चमकाल, ते वन्दौं नित दीनदयाल॥[1]
तीन लोक के तीरथ जहाँ, नित प्रति वन्दन कीजै तहाँ।
मनवचकाय सहित सिर नाय, वन्दन करहिं भविक गुणगाय॥
संवत् सतरह सौ इकताल, आश्विन सुदि दशमी सुविशाल।
'भैया' वन्दन करहिं त्रिकाल, जय निर्वाणकाण्ड गुणमाल॥

स्वयंभूस्तोत्र (भाषा)

(पं. राजमलजी पवैया कृत)

(चौपाई)

राजविषैं जुगलनि सुख कियो, राज त्याग भुवि शिवपद लियो।
स्वयंबोध स्वयंभू भगवान, वन्दौं आदिनाथ गुणखान॥

इन्द्र क्षीर सागर-जल लाय, मेरु न्हवाये गाय बजाय।
मदन-विनाशक सुख करतार, वन्दौं अजित अजित-पदकार॥

शुकल ध्यानकरि करम विनाशि, घाति-अघाति सकल दुखराशि।
लह्यो मुकतिपद सुख अविकार, वन्दौं सम्भव भव-दुःख टार॥

माता-पच्छिम रयन मँझार, सुपने सोलह देखे सार।
भूप पूछि फल सुनि हरषाय, वन्दौं अभिनन्दन मन लाय॥

सब कुवदवादी सरदार, जीते स्यादवाद-धुनि धार।
जैन-धरम-परकाशक स्वाम, सुमतिदेव-पद-करहुँ प्रणाम॥

गर्भ अगाऊ धनपति आय, करी नगर-शोभा अधिकाय।
बरसे रतन पंचदश मास, नमौं पदमप्रभु सुखकी रास॥

इन्द फनिन्द नरिन्द त्रिकाल, बानी सुनि-सुनि होहिं खुस्याल।
द्वादश सभा ज्ञान-दातार, नमौं सुपारसनाथ निहार॥

सुगुन छियालिस हैं तुम माहिं, दोष अठारह कोऊ नाहिं।
मोह-महातम-नाशक दीप, नमौं चन्द्रप्रभ राख समीप॥

द्वादशविध तप करम विनाश, तेरह भेद चरित परकाश।
निज अनिच्छभवि इच्छक दान, वन्दौं पुहुपदन्त मन आन॥

भवि-सुखदाय सुरगतैं आय, दशविध धरम कह्यो जिनराय।
आप समान सबनि सुख देह, वन्दौं शीतल धर्म-सनेह॥

समता-सुधा कोप-विष नाश, द्वादशांग वानी परकाश।
चार संघ आनंद-दातार, नमों श्रियांस जिनेश्वर सार॥

रत्नत्रय चिर मुकुट विशाल, सोभै कण्ठ सुगुन मनि-माल।
मुक्ति-नार भरता भगवान, वासुपूज्य वन्दौं धर ध्यान॥

परम समाधि-स्वरूप जिनेश, ज्ञानी-ध्यानी हित-उपदेश।
कर्म नाशि शिव-सुख-विलसन्त, वन्दौं विमलनाथ भगवन्त॥

अन्तर-बाहिर परिग्रह टारि, परम दिगम्बर-व्रत को धारि।
सर्व जीव-हित-राह दिखाय, नमौं अनन्त वचन-मन लाय॥

सात तत्त्व पंचास्तिकाय, अरथ नवों छ दरब बहु भाय।
लोक अलोक सकल परकास, वन्दौं धर्मनाथ अविनाश॥

पंचम चक्रवर्ती निधि भोग, कामदेव द्वादशम मनोग।
शान्तिकरन सोलम जिनराय, शान्तिनाथ वन्दौं हरषाय॥

बहु थुति करे हरष नहिं होय, निन्दे दोष गहैं नहिं कोय।
शीलवान परब्रह्मस्वरूप, वन्दौं कुन्थुनाथ शिव-भूप॥

द्वादश गण पूजैं सुखदाय, थुति वन्दना करैं अधिकाय।
जाकी-निज-थुति कबहुँ न होय, वन्दौं अर-जिनवर-पद दोय॥

पर-भव रत्नत्रय-अनुराग, इह भव ब्याह-समय वैराग।
बाल-ब्रह्म पूरन-व्रत धार, वन्दौं मल्लिनाथ जिनसार॥

बिन उपदेश स्वयं वैराग, थुति लोकान्त करै पग लाग।
नमः सिद्ध कहि सब व्रत लेहि, बन्दौं मुनिसुव्रत व्रत देहिं॥

श्रावक विद्यावन्त निहार, भगति-भाव सों दिये अहार।
बरसी रतन-राशि तत्काल, बन्दौं नमिप्रभु दीन-दयाल॥

सब जीवन की बन्दी छोर, राग-द्वेष द्वय बन्धन तोर।
रजमति तजि शिव-तिय सों मिले, नेमिनाथ बन्दौं सुखनिले॥

दैत्य कियो उपसर्ग अपार, ध्यान देखि आयो फनिधार।
गयो कमठ शठ मुख कर श्याम, नमों मेरु-सम पारसस्वामि॥

भव-सागर तैं जीव अपार, धरम-पोत में धरे निहार।
डूबत काढ़े दया विचार, वर्द्धमान बन्दौं बहुबार॥

(दोहा)

चौबीसों पद-कमल-जुग, बन्दौं मन-वच-काय।
द्यानत पढ़ै सुनै सदा, सो प्रभु क्यों न सहाय॥

चौबीस तीर्थंकरों के अर्घ्य

1. श्री ऋषभनाथ भगवान का अर्घ्य

(ताटंक)

शुचि निरमल नीरं गंध सुअक्षत, पुष्प चरु ले मन हरषाय।
दीप धूप फल अर्घ्य सु लेकर, नाचत ताल मृदंग बजाय॥
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि-बलि जाऊँ मन-वच-काय।
हे करुणानिधि! भव-दु:ख मेटो, यातैं मैं पूजूँ प्रभु पाय॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

2. श्री अजितनाथ भगवान का अर्घ्य

(त्रिभंगी)

जल-फल सब सज्जै, बाजत बज्जै, गुनगन रज्जै मन मज्जै।
तुअ पद जुगमज्जे, सज्जन जज्जै, ते भव भज्जै निजकज्जै॥
श्री अजितजिनेशं, नुतनक्रेशं, चक्रधरेशं खगेशं।
मनवांछित दाता, त्रिभुवनत्राता, पूजों ख्याता जग्गेशं॥

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

3. श्री संभवनाथ भगवान का अर्घ्य

(चौबोला)

जल चंदन तंदुल प्रसून चरु, दीप धूप फल अर्घ्य किया।
तुमको अरपों भावभगतिधर, जै जै जै शिवरमनि पिया॥
संभवजिन के चरन चरच तें, सब आकुलता मिट जावै।
निज निधि ज्ञान-दरश-सुख-वीरज, निराबाध भविजन पावै॥

ॐ ह्रीं श्री संभवनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

4. श्री अभिनन्दननाथ भगवान का अर्घ्य

(हरिगीतिका)

अष्ट द्रव्य सँवारि सुन्दर, सुजस गाय रसाल ही।।
नचत रचत जजों चरन जुग, नाय नाय सुभाल ही॥
कलुषताप निकन्द श्री अभिनन्द, अनुपम चन्द है।
पदवंद वृन्द जजे प्रभु भवदन्द-फन्द निकन्द है॥

ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दननाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

5. श्री सुमतिनाथ भगवान का अर्घ्य

(छन्द कवित)

जल चंदन तंदुल प्रसून चरु, दीप धूप फल सकल मिलाय।
नाचि राचि शिरनाय समरचों, जय जय जय जय जय जिनराय॥
हरिहर वंदित पापनिकंदित, सुमतिनाथ त्रिभुवन के राय।
तुम पदपद्म सद्मशिवदायक, जजत मुदित मन उदित सुभाय॥

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

6. श्री पद्मप्रभ भगवान का अर्घ्य

(चाल होली)

जल फल आदि मिलाय गाय गुन, भगति भाव उमगाय।
जजों तुमहिं शिवतियवर जिनवर, आवागमन मिटाय॥
मन-वच-तन त्रय धार देत ही, जनम जरा मृत जाय।
पूजों भावसों श्री पदमनाथपद सार, पूजों भावसों॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

7. श्री सुपार्श्वनाथ भगवान का अर्घ्य

(चौपाई आँचलीबद्ध)

आठों दरब साजि गुनगाय, नाचत राचत भगति बढ़ाय।
दयानिधि हो, जय जगबन्धु दयानिधि हो॥
तुम पद पूजों मन-वच-काय, देव सुपारस शिवपुरराय।
दयानिधि हो, जय जगबन्धु दयानिधि हो॥

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

8. श्री चन्द्रप्रभ भगवान का अर्घ्य

(अवतार)

सजि आठों दरब पुनीत, आठों अंग नमों।
पूजों अष्टम जिन मीत, अष्टम अवनि गमों॥
श्री चंदनाथ दुति चंद, चरनन चंद लगै,
मन-वचन-तन जजत अमंद, आतमजोति जगै॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

9. श्री पुष्पदन्त भगवान का अर्घ्य

(चाल होली)

जल फल सकल मिलाय मनोहर, मन-वच-तन हुलसाय।
तुम पद पूजौं प्रीति लायकै, जय जय त्रिभुवनराय॥
मेरी अरज सुनीजे, पुष्पदन्त जिनराय॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंत जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

10. श्री शीतलनाथ भगवान का अर्घ्य

(बसंततिलका)

श्रीफलादि वसु प्रासुक द्रव्य साजै।
राचे रचे मचत बज्जत सज्ज बाजे॥

रागादि दोष मलमर्दन हेतु येवा।
चर्चों पदाब्ज तव शीतलनाथ देवा॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

11. श्री श्रेयांसनाथ भगवान का अर्घ्य

(हरिगीता)

जल मलय तंदुल सुमन चरु अरु दीप धूप फलावली।
करि अर्घ्य चरचों चरनजुग प्रभु मोहि तार उतावली॥
श्रेयांसनाथ जिनन्द त्रिभुवनवन्द आनन्दकन्द हैं।
दुख दन्द-फन्द निकन्द पूरनचन्द जोति अमन्द हैं॥

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

12. श्री वासुपूज्य भगवान का अर्घ्य

(जोगीरासा)

जल-फल दरब मिलाय गाय गुन, आठों अंग नमाई।
शिवपदराज हेत हे श्रीपति! निकट धरों यह लाई॥
वासुपूज वसुपूज तनुज पद, वासव सेवत आई।
बालब्रह्मचारी लखि जिनको, शिवतिय सनमुख धाई॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

13. श्री विमलनाथ भगवान का अर्घ्य

(सोरठा)

आठों दरब सँवार, मन-सुखदायक पावने।
जजों अर्घ्य भर थार, विमल विमल शिवतिय रमन॥

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

14. श्री अनन्तनाथ भगवान का अर्घ्य

(हरिगीता)

शुचि नीर चन्दन शालिशंदन, सुमन चरु दीवा धरों।
अरु धूप जुत मैं अरघ करि, करजोर जुग विनती करों॥
जगपूज परमपुनीत मीत, अनन्त संत सुहावनों।
शिवकंतवंत महंत ध्यावों, भ्रन्ततंत नशावनों॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

15. श्री धर्मनाथ भगवान का अर्घ्य

(जोगीरासा)

आठों दरब साज शुचि चित्रहर, हरषि गुन गाई।
बाजत दृम दृम दृम मृदंग गत, नाचत ता थेई थाई॥
परम धरम-सिमरन धरम-जिन, अशरन शरन तिहारी।
पूजूँ पाय गाय गुन सुन्दर नाचूँ दै दै तारी॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

16. श्री शांतिनाथ भगवान का अर्घ्य

(त्रिभंगी)

वसु द्रव्य सँवारी, तुम ढिग धारी, आनन्दकारी दृग प्यारी।
तुम हो भवतारी, करुनाधारी, यातैं थारी शरनारी।
श्री शांतिजिनेशं, नुतशक्रेशं, वृषचक्रेशं चक्रेशं।
हनि अरिचक्रेशं हे गुनधेशं दयामृतेशं मक्रेशं॥

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

17. श्री कुन्थुनाथ भगवान का अर्घ्य

(चाल लावनी)

जल चन्दन तन्दुल प्रसून चरु, दीप धूप लेरी।
फलजुत जजन करों मन सुख धरी, हरो जगत फेरी॥
कुन्थु सुन अरज दास केरी, नाथ सुनि अरज दास केरी।
भवसिन्धु परयो हों नाथ, निकारो बाँह पकर मेरी॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

18. श्री अरनाथ भगवान का अर्घ्य

(त्रिभंगी)

शुचि स्वच्छ, पठीरं, गंधगहीरं, तंदुलशीरं पुष्प चरू।
वर दीपं धूपं, आनन्दरूपं, लै फल भूपं अर्घ्य करूँ॥
प्रभु दीनदयालं अरिकुलकालं, विरदविशालं सुकुमालम्।
हनि मम जंजालं, हे जगपालं, अनगुनमालं वरभालम्॥

ॐ ह्रीं श्री अरनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

19. श्री मल्लिनाथ भगवान का अर्घ्य

(जोगीरासा)

जल फल अरघ मिलाय गाय गुन पूजौं भगति बढ़ाई।
शिवपदराज हेत हे श्रीधर, शरन गही मैं आई॥
राग-द्वेष मद मोह हरन को, तुम ही हौ वरवीरा।
यातैं शरन गही जगपतिजी, वेग हरो भवपीरा॥

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

20. श्री मुनिसुव्रतनाथ भगवान का अर्घ्य

(गीतिका)

जल गंध आदि मिलाय आठों, दरब अरघ सजों वरूँ।
पूजों चरनरज भगत जुत, जातैं जगत सागर तरूँ॥
शिवसाथ करत सनाथ सुव्रतनाथ मुनि गुनमाल है।
तसु चरन आनन्द भरन तारन, तरन विरद विशाल है॥

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

21. श्री नमिनाथ भगवान का अर्घ्य

(जोगीरासा)

जल फलादि मिलाय मनोहरं, अरघ धारत ही भय भौं हरं।
जजतु हौं नमि के गुन गायकें, जुगपदांबुज प्रीति लगायकें॥

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

22. श्री नेमिनाथ भगवान का अर्घ्य

(चाल होली)

जल-फल आदि साज शुचि लीने, आठों दरब मिलाय।
अष्टमथिति के राजकरन कों जजों अंग वसु नाय॥
दाता मोक्ष के, श्री नेमिनाथ जिनराय, दाता मोक्ष के॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

23. श्री पार्श्वनाथ भगवान का अर्घ्य

नीर गन्ध अक्षतान् सुपुष्प चारु लीजिए।
दीप-धूप-श्रीफलादि अर्घ्य तैं जजीजिये॥
पार्श्वनाथ देव सेव आपकी करूँ सदा।
दीजिए निवास मोक्ष, भूलिए नहीं कदा॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

24. श्री महावीर भगवान का अर्घ्य

(अवतार)

(1) जलफल वसु सजि हिमथार, तन-मन मोद धरों।
गुण गाऊँ भवदधि तार, पूजत पाप हरों॥
श्री वीर महा अतिवीर सन्मतिनायक हो।
जय वर्द्धमान गुणधीर सन्मतिदायक हो॥
ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(2) इस अर्घ्य का क्या मूल्य है अन्-अर्घ्य पद के सामने।
उस परम पद को पा लिया, हे पतित-पावन! आपने॥
सन्तप्त मानस शान्त हों, जिनके गुणों के गान में।
वे वर्धमान महान जिन, विचरें हमारे ध्यान में॥
ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अकृत्रिम चैत्यालयों के अर्घ्य

(शार्दूलविक्रीडित)

कृत्रिमा कृत्रिम-चारु-चैत्य-निलयान् नित्यं त्रिलोकी-गतान्।
वंदे भावनव्यंतरात-द्युतिवरान् स्वर्गामरावासगान्।
सद्गंधाक्षत-पुष्प-दाम-चरुकै : सद्दीपधूपैः
फलैर्द्रव्यैनीर -मुखैर्यजामि सततं दुष्कर्मणां शांतये ॥1॥

ॐ ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिम-चैत्यालय संबंधी-जिनबिम्बेभ्योअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(उपजाति)

वर्षेशु-वर्षांतर-पर्वतेषु नन्दीश्वरे यानि च मंदरेषु।
यावंति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वंदे जिनपुंगवानां ॥2॥

(मालिनी)

अवनि तल-गतानां कृत्रिमाकृत्रिमाणां,
वन-भवन-गतानां दिव्य-वैमानिकानां।
इह मनुज-कृतानां देवराजार्चितानां,
जिनवर-निलयानां भावतोऽहं स्मरामि ॥3॥

(शार्दूलविक्रीडित)

जंबू-धातकि-पुष्करार्ध-वसुधा-क्षेत्र त्रये ये भवा-
श्चन्द्रांभोज-शिखंडि-कण्ठ-कनक-प्रावृड्घनाभा जिनाः।
सम्यग्ज्ञान-चरित्र-लक्षणधरा दग्धाष्ट-कर्मेन्धनाः।
भूतानागत-वर्तमान-समये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः ॥4॥

(स्रग्धरा)

श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजत-गिरिवरे शाल्मलौ जंबुवृक्षे,
वृक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकर-रुचिके कुंडले मानुषांके।
इष्वाकारे जनाद्रौ दधि-मुख-शिखरे व्यन्तरे स्वर्गलोके,
ज्योतिर्लोकेऽभिवंदे भवन-महितले यानि चैत्यालयानि॥5॥

(शार्दूलविक्रीडित)

द्वौ कुंदेंदु-तुषार-हार-धवलौ द्वाविन्द्रनील-प्रभौ,
द्वौ बंधूक-सम-प्रभौ जिनवृषौ द्वौ च प्रियंगुप्रभौ।
शेषाः षोडश जन्म-मृत्यु-रहिताः संतप्त-हेम-प्रभाः,
ते संज्ञान-दिवाकराः सुरनुताः सिद्धि प्रयच्छंतु नः॥6॥

ॐ ह्रीं त्रिलोक संबंधी-कृत्रिमाकृत्रिम-चैत्यालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावलि

(देव-शास्त्र-गुरू का अर्घ्य)

(गीता)

(1) जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूँ।
वर धूप निरमल फल विविध बहु, जनम के पातक हरूँ॥
इह भाँति अर्घ्य चढ़ाय नित भवि, करत शिव पंकति मचूँ।
अरहंत श्रुत सिद्धान्त गुरु, निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥

(छोटा)

वसु विधि अर्घ्य संजोयकै, अति उछाह मन कीन।
जासों पूजों परम पद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(2) क्षण भर निजरस को पी चेतन मिथ्यामल को धो देता है।
काषायिक भाव विनष्ट किये, निज आनन्द अमृत पीता है॥
अनुपम सुख तब विलसित होता, केवल-रवि जग-मग करता है।
दर्शन-बल पूर्ण प्रकट होता यह ही अरहंत अवस्था है॥
यहअर्घ्य समर्पण करके प्रभु, निज गुण का अर्घ्य बनाऊँगा।
और निश्चित तेरे सदृश प्रभु, अरहन्त अवस्था पाऊँगा॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(3) बहुमूल्य जगत का वैभव यह, क्या हमको सुखी बना सकता।
अरे पूर्णता पाने में, इसकी क्या है आवश्यकता॥
मैं स्वयं पूर्ण हूँ अपने में, प्रभु है अनर्घ्य मेरी माया।
बहुमूल्य द्रव्यमय अर्घ्य लिये, अर्पण के हेतु चला आया॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(पंचपरमेष्ठी का अर्घ्य)

जल चन्दन अक्षत पुष्प दीप, नैवेद्य धूप फल लाया हूँ।
अब तक के संचित कर्मों का, मैं पुंज जलाने आया हूँ॥
यह अर्घ्य समर्पित करता हूँ, अविचल अनर्घ्य पद दो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव दु:ख मेटो अन्तर्यामी।

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्धपरमेष्ठी का अर्घ्य (संस्कृत)

(वसन्ततिलका)

ज्ञानोपयोगविमलं विशदात्मरूपं,
सूक्ष्मस्वभावपरमं यदनन्तवीर्यम्।
कर्मेन्धकक्षदहनं सुखस्य बीजं,
वन्दे सदा निरुपमं वर सिद्धचक्रम॥

(अनुष्टुप)

कर्माष्टक विनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मी-निकेतनम्।
सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम्॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्धपरमेष्ठी का अर्घ्य (हिन्दी)

जल पिया और चन्दन चरचा, मालायें सुरभित सुमनों की।
पहनी, तन्दुल सेये व्यंजन, दीपावलियों की रत्नों की॥

सुरभि धूपायन की फैली, शुभ कर्मों का सब फल पाया।
आकुलता फिर भी बनी रही, क्या कारण जान नहीं पाया॥

जब दृष्टि पड़ी प्रभुजी तुम पर, मुझ को स्वभाव का भान हुआ।
सुख नहीं विषय-भोगों में है, तुमको लख यह सद्ज्ञान हुआ॥
जल से फल तक का वैभव यह, मैं आज त्यागने हूँ आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चौबीस तीर्थङ्कर का अर्घ्य

जल फल आठों शुचिसार, ताकों अर्घ्य करों।
तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरों॥
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द कन्द सही।
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष मही॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरांतेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय पूजन का अर्घ्य

अष्टम वसुधा पाने को, कर में ये आठों द्रव्य लिये।
सहज शुद्ध स्वाभाविकता से, निज में निज गुण प्रकट किये॥
यह अर्घ्य समर्पण करके मैं, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थङ्कर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य: अनन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठिभ्यश्च अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विदेह क्षेत्र में विद्यमान बीस तीर्थङ्करों का अर्घ्य

जल फल आठों दर्व अरघ कर प्रीति धरी है।
गणधर इन्द्रनि हूतैं थुति पूरी न करी है॥

'द्यानत' सेवक जानके (हो) जगतैं लेहु निकार।
सीमंधर जिन आदि दे (स्वामी) बीस विदेह मँझार॥
श्री जिनराज हो भव तारणतरण जिहाज, श्री महाराज हो॥
ॐ ह्रीं श्री सीमंधरादिविद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महावीर भगवान का अर्घ्य

इस अर्घ्य का क्या मूल्य है अनर्घ्य पद के सामने?
उस परम-पद को पा लिया, हे पतित-पावन आपने॥
संतप्त-मानस शान्त हों, जिनके गुणों के गान में।
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में॥
ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच-बालयति का अर्घ्य

सजि वसुविधि द्रव्य मनोज्ञ, अर्घ्य बनावत हैं।
वसुकर्म अनादि संयोग, ताहि नसावत हैं॥
श्री वासु पूज्य-मल्लि-नेमि, पारस वीर अति।
नमूँ मन-वच-तन धरि प्रेम, पाँचों बालयति॥
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-मल्लिनाथ-नेमिनाथ-पार्श्वनाथ-महावीर पंच बालयति तीर्थंकरेभ्यो: अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नन्दीश्वर द्वीप का अर्घ्य

यह अरघ, कियो निज हेत, अरपतु हों।
'द्यानत' कीज्यो शिवखेत, भूमि समरपतु हों॥
नन्दीश्वर श्री जिनधाम, बावन पुंज करों।
वसुदिन प्रतिमा अभिराम, आनन्द भाव धरों॥
ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दशलक्षण धर्म का अर्घ्य

(सोरठा)

आठों दरव सँवार, 'द्यानत' अधिक उछाह सों।
भव-आताप निवार, दशलक्षण पूजों सदा॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मांगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय का अर्घ्य

(सोरठा)

आठों दरव निरधार, उत्तम सो उत्तम लिये।
जनम रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यग्दर्शन का अर्घ्य

(सोरठा)

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजों सदा॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यग्ज्ञान का अर्घ्य

(सोरठा)

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजों सदा॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टाविध-सम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्चारित्र का अर्घ्य

(सोरठा)

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यक् चारितसार, तेरह विधि पूजों सदा॥

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचमेरु का अर्घ्य

आठ दरबमय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमाजी को करहुँ प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरु सम्बन्धि अशीतिजिन-चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सोलहकारण का अर्घ्य

जल फल आठों दरब चढ़ाय, 'द्यानत' वरत करों मनलाय।
परमगुरु हो, जय-जय नाथ परमगुरु हो॥
दरशविशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थङ्कर पद पाय।
परमगुरु हो, जय-जय नाथ परमगुरु हो॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोड़शकारणेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

मैं देव श्री अरहंत पूजूँ, सिद्ध पूजूँ चाव सों।
आचार्य श्री उवझाय पूजूँ, साधु पूजूँ भाव सों॥
अरहन्त भाषित बैन पूजूँ, द्वादशांग रची गनी।
पूजूँ दिगम्बर गुरुचरण, शिवहेत सब आशा हनी॥
सर्वज्ञ भाषित धर्म दशविधि, दयामय पूजूँ सदा।
जजि भावना षोडश रत्नत्रय, जा बिनाशिव नहिं कदा॥
त्रैलोक्य के कृत्रिम-अकृत्रिम, चैत्य-चैत्यालय जजूँ।
पंचमेरु-नन्दीश्वर जिनालय, खचर सुर पूजित भजूँ॥
कैलाश श्री सम्मेदगिरि, गिरनार मैं पूजूँ सदा।

चम्पापुरी पावापुरी पुनि, और तीरथ शर्मदा॥
चौबीस श्री जिनराज पूजूँ, बीस क्षेत्र विदेह के।
नामावली इक सहस वसु जय, होय पति शिव गेह के॥

दोहा

जल गंधाक्षत पुष्प चरू, दीप धूप फल लाय।
सर्व पूज्य पद पूजहूँ, बहु विधि भक्ति बढ़ाय॥

ॐ ह्रीं श्री अरहन्तसिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो, द्वादशांगजिनवाणीभ्यो उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय, दर्शनविशुद्धयादिषोड़शकारणेभ्यो, सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्रेभ्यः त्रिलोकसम्बन्धीकृत्रिमाकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो, पंचमेरौ अशीति-चैत्यालयेभ्यो, नन्दीश्वरद्वीपस्थद्विपंचाशज्जिनालयेभ्यो, श्री सम्मेदशिखर, गिरनारगिरि, कैलाशगिरि, चम्पापुर, पावापुर आदि सिद्धक्षेत्रेभ्यो, अतिशयक्षेत्रेभ्यो, विदेहक्षेत्रस्थित सीमंधरादिविद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो, ऋषभादिचतुर्विंशति-तीर्थंकरेभ्यो, भगवज्जिन सहस्राष्टनामेभ्यश्च अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शान्ति-पाठः

(संस्कृत)

शान्तिजिनं शशिनिर्मलवक्त्रं, शील-गुण-व्रत-संयम-पात्रम।
अष्टशतार्चित-लक्षण-गात्रं, नौभि जिनोत्तममम्बुजनैत्रम्॥ 1॥
पंचमभीप्सित-चक्रधराणां पूजितमिन्द्र-नरेन्द्र-गणैश्च।
शान्तिकरं गण-शान्तिमभीप्सुः, षोड़श-तीर्थकरं प्रणमामि॥ 2॥
दिव्य-तरूः सुर-पुष्प-सुवृष्टि, र्दुन्दुभिरासन-योजन-घोषौ।
आतापवारण-चामर-युग्मे,यस्य विभाति च मण्डलतेजः॥ 3॥
तं जगदार्चित-शान्ति-जिनेन्द्रं, शान्तिकरं शिरसा प्रणमामि।
सर्वगणाय तु यच्छतु शान्तिं, मह्यमरं पठते परमां च॥ 4॥

वसन्ततिलका

येऽभ्यर्चिता मुकुट-कुण्डल-हार-रत्नैः
शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुत-पाद-पद्माः
ते मे जिनाः प्रवर-वंश-जगत्प्रदीपा-
स्तीर्थंकराः सतत-शान्तिकरा भवन्तु॥ 5॥

इन्द्रवज्रा

संपूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानाम्।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शान्तिं भगवज्जिनेन्द्र॥ 6॥

शार्दुलविक्रीडित

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान्धार्मिको भूमिपालः,
काले काले च सम्यग्विकिसु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम्।
दुर्भिक्षं चौर-मारी क्षणमपि जगतां मा स्म भूज्जीवलोके,
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं, सर्व-सौख्य-प्रदायि॥ 7॥

अनुष्टुप्

प्रध्वस्त-घाति-कर्माणः, केवलज्ञान-भास्कराः।
कुर्वन्तु जगतां शान्तिं, वृषभाद्या जिनेश्वराः॥ 8॥

मन्दाक्रान्ता

शास्त्राभ्यासो जिनपति-नुतिः संगतिः सर्वदार्यैः,
सद् वृत्तानां गुण-गण-कथा दोष-वादे च मौनम्।
सर्वस्यापि प्रिय-हित-वचो भावना चात्मतत्वे,
संपद्यन्तां मम भव-भवे यावदेतेऽपवर्गः॥ 9॥

आर्या

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं मम तवपदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद्यावन्निर्वाण-संप्राप्ति॥ 10॥

गाथा

अक्खर-पयत्थ-हीणं, मत्ता-हीणं- च जं मए भणियं।
तं खमउ णाणदेव य, मज्झ वि दुक्ख-क्खयं दिंतु॥
दुक्ख-खओ-कम्म-खओ समाहिमरणं च बोहि-लाहो य।
मम होउ जगद-बंध तव जिणवर चरण सरणेण॥ 11॥

नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें

क्षमापन

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि शास्त्रोक्तं न कृतं मया।
तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु तत्प्रसादज्जिनेश्वर॥ 1॥
आह्वाननं नैव जानामि नैव जानामि पूजनम्।
विसर्जनं नैव जानामि क्षमस्व परमेश्वर॥ 2॥
मन्त्र-हीनं, क्रिया-हीनं, द्रव्य-हीनं तथैव च।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव रक्ष-रक्ष जिनेश्वर॥3॥
मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोऽस्तु मंगलम्॥4॥
सर्व मंगल मांगल्यं सर्व कल्याणकारकं।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम्॥5॥

शान्ति-पाठः भाषा

(चौपाई)

शांतिनाथ मुख-उनहारी, शील-गुण-व्रत-संयमधारी।
लखन एक सौ आठ विराजैं, निरखत नयन कमलदल लाजैं॥
पंचम चक्रवर्ति पद धारी, सोलम तीर्थंकर सुखकारी।
इन्द्र-नरेन्द्र पूज्य जिन-नायक, नमो शांति-हित-शांति-विधायक॥
दिव्य विटप बहुपन की वरषा, दुन्दुभि आसन वाणी सरसा।
छत्र चमर भामंडल भारी, ये तुव, प्रातिहार्य मनहारी।
शांति-जिनेश शांति सुखदाई, जगत पूज्य पूजौं शिर नाई।
परम शांति दीजे हम सबको, पढ़ैं तिन्हें पुनि चार संघ को॥

(वसन्ततिलका)

पूजैं जिन्हें मुकुट-हार-किरीट लाके।
इन्द्रादि देव अरू पूज्य पदाब्ज जाके॥
सो शांतिनाथ वर-वंश जगत प्रदीप।
मेरे लिये करहिं शान्ति सदा अनूप॥

(इन्द्रवज्रा)

संपूजकों को प्रतिपालकों को, यतीन को और यतिनायकों को।
राजा-प्रजा-राष्ट्र-सुदेश को ले, कीजै सुखी हे जिन! शांति को दे॥

(स्त्रग्धरा)

होवै सारी प्रजा को, सुख बलयुत हो, धर्मधारी नरेशा।
होवे वर्षा समय पै, तिल भर न रहै, व्याधियों का अंदेशा॥
होवे चोरी न जारी, सुसमय वरते, हो न दुष्काल मारी।
सारे ही देश धारैं जिनवर-वृष को, जो सदा सौख्यकारी॥

दोहा

घातिकर्म जिन नाश करि, पायो केवलराज।
शांति करो सब जगत् में, वृषभादिक जिनराज॥

(मंदाक्रान्ता)

शास्त्रों का हो पठन सुखदा, लाभ सत्संगति का।
सद्वृत्तों का सुजस कहके, दोष ढाकूँ सभी का॥
बोलूँ प्यारे वचन हित के, आपका रूप ध्याऊँ।
तौ लौं सेऊँ चरण जिनके, मोक्ष जौं लौं न पाऊँ॥

(आर्या)

तव पद मेरे हिय में, मम हिय तेरे पुनीत चरणों में।
तब लौं लीन रहौं प्रभु, जब लौं पायाा न मुक्ति-पद मैंने॥
अक्षर पद मात्रा से दूषित, जा कुछ कहा गया मुझसे।
क्षमा करो प्रभु सो सब, करूणाकरि पुनि छुड़ाहु भव दुख से।
हे जग बन्धु जिनेश्वर! पाऊँ तव चरण-शरण बलिहारी।
मरण समाधि सुदुर्लभ, कर्मों का क्षय सुबोध सुखकारी॥

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें।

क्षमापना (दोहा)

बिन जाने वा जान के, रही टूट जो कोय।
तुम प्रसाद तैं परम गुरू, सो सब पूरन होय॥ 1॥
पूजन-विधि जानूँ नहीं, नहीं जानूं आह्वान।
और विसर्जन हू नहीं, क्षमा करहु भगवान॥ 2॥
मन्त्रहीन धनहीन हूँ, क्रियाहीन जिनदेव।
क्षमा करहु राखहु मुझे, देहु चरण की सेव॥ 3॥
तुम चरणन ढिंग आयके, मैं पूजूँ अतिचाव।
आवागमन रहित करो, मेटो सकल विभाव॥ 4॥

शान्ति-पाठ

(हरिगीतिका)

शास्त्रोक्त विधि पूजा महोत्सव, सुरपति चक्री करैं।
हम सारिखे लघु पुरुष कैसे, यथाविधि पूजा करैं॥
धन-क्रिया-ज्ञान रहित न जाने, रीत पूजन नाथजी।
हम भक्तिवश तुम चरण आगै, जोड़ लीने हाथजी॥

दु:ख-हरन मंगलकरन, आशा-भरन जिन पूजा सही।
यह चित्त में श्रद्धान मेरे, शक्ति है स्वयमेव ही॥
तुम सारिखे दातार पाये, काज लघु जाचूँ कहाँ।
मुझ आपसम कर लेहु स्वामी, यही इक वांछा महा॥

संसार भीषण विपिन में, वसु कर्म मिल आतापियो।
तिस दाहतैं आकुलित चिरतैं, शान्तिथल कहुँ ना लियो॥
तुम मिले शान्तिस्वरूप, शान्ति सुकरन समरथ जगपती।
वसु कर्म मेरे शान्ति कर दो, शान्तिमय पंचमगती॥

जबलौं नहीं शिव लहूँ, तबलों देह यह नर पावना।
सत्संग शुद्धाचरण श्रुत अभ्यास आतम भावना॥
तुम बिन अनंतानंत काल गयो रूलत जगजाल में।
अब शरण आयो नाथ युग कर, जो नावत भाल मैं॥

(दोहा)

कर प्रमाण के मान तैं, गगन नपै किहि भंत।
त्यों तुम गुण वर्णन करत, कवि पावे नहिं अंत॥

क्षमापना-पाठ

सम्पूर्ण विधि कर वीनऊँ, इस परम पूजन पाठ में।
अज्ञानवश शास्त्रोक्त-विधि तें, चूक कीनों पाठ में॥
सो होऊ पूर्ण समस्त विधिवत् तुम चरण की शरण तें।
वन्दूँ तुम्हें कर जोड़ के, उद्धार जामन-मरण तें॥

आह्वाननं स्थापन तथा, सन्निधिकरण विधानजी।
पूजन विसर्जन यथाविधि, जानूँ नहीं गुणखानजी॥
जो दोष लाग्यो सो नशौ, सब तुम चरण की शरण तें।
वन्दूँ तुम्हें कर जोरि के, उद्धार जामन-मरण तें।

तुम रहित आवागमन, आह्वाननं कियो निज भाव में।
विधि यथाक्रम निजशक्ति सम, पूजन कियो अति चाव में॥
करहूँ विसर्जन भाव ही में, तुम चरण की शरण तें।
वन्दूँ तुम्हें कर जोरि के, उद्धार जामन-मरण तें॥

(दोहा)

तीन भुवन तिहुँ काल में, तुमसा देव न और।
सुख कारन संकट हरन, नमहूँ युगल कर जोरि॥

ॐ

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

मङ्गल अर्चना

सङ्कलन एवं सञ्चादन

देवेन्द्रकुमार जैन

तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ़

सह-सञ्चादन

मङ्गलार्थी सुलभ जैन, झाँसी

मङ्गलार्थी केविन शाह, मुञ्बई

मङ्गलार्थी शुद्धात्मप्रकाश जैन, भीलवाड़ा

प्रकाशन सहयोग

श्रीमती पूनम जैन धर्मपत्नी मुकेशकुमार जैन

ठेकेदार परिवार, सहारनपुर

प्रकाशक :

तीर्थधाम मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगञ्बर जैन ट्रस्ट

सासनी - 204216, हाथरस (उत्तरप्रदेश) भारत

प्रथम संस्करण : 2000 प्रतियाँ
[मङ्गलायतन विश्वविद्यालय में आयोजित, श्री आदिनाथ जिनबिम्ब पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के पावन अवसर पर (दिनाङ्क 16 से 23 दिसम्बर 2010) प्रकाशित]

ISBN No. :

न्योछावर राशि : रुपये 20.00

Available At -

— **TEERTHDHAM MANGALAYATAN,**
Aligarh-Agra Road, Sasni-204216, Hathras (U.P.)
Website : www.mangalayatan.com; e-mail : info@mangalayatan.com

— **Pandit Todarmal Smarak Bhawan,**
A-4, Bapu Nagar, Jaipur-302015 (Raj.)

— **SHRI HITEN A. SHETH,**
Shree Kundkund-kahan Parmarthik Trust
302, Krishna-Kunj, Plot No. 30,
Navyug CHS Ltd., V.L. Mehta Marg,
Vile Parle (W), Mumbai - 400056
e-mail : vitragva@vsnl.com / shethhiten@rediffmail.com

— **Shri Kundkund Kahan Jain Sahitya Kendra,**
Songarh (Guj.)

टाइप सेटिंग :
मङ्गलायतन ग्राफिक्स, अलीगढ़

मुद्रक :
देशना कम्प्यूटर्स, जयपुर

प्रकाशकीय

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय में नवनिर्मित श्री महावीरस्वामी जिनमन्दिर के पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर मङ्गल अर्चना नामक पुस्तक का प्रकाशन करते हुए – हमें अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

आचार्य पद्मनन्दिदेव ने श्रावकों के छह आवश्यक कर्तव्यों का वर्णन करते हुए सर्व प्रथम देव पूजा को स्थान दिया है, उसका कारण यह है कि वीतरागी जिनेन्द्र देव, धर्म के मूल हैं। उनके द्वारा प्ररूपित द्वादशांग वाणी एवं आत्मसाधना के मार्ग पर गमनशील वीतरागी मुनिराज हमारे आराध्य और उपास्य हैं। साथ ही वर्ष में अष्टाह्निका, दशलक्षण, सोलह कारण एवं तीर्थङ्करों के कल्याणक आदि पर्व भी समय-समय पर हमें आत्मकल्याण का मार्ग दर्शाने में निमित्त होते हैं। अतः इस प्रस्तुत प्रकाशन में मुख्यतः सभी प्रकार की पूजनों को स्थान दिया गया है। जिससे प्रतिदिन जिनेन्द्र पूजन करनेवाले साधर्मी भाई-बहिनों को एक ही पुस्तक में सम्पूर्ण प्रमेय उपलब्ध हो सके।

इस प्रकाशन में जिन-जिन पूजन लेखकों की पूजाओं को उपयोग किया गया है, उन सबके प्रति हम हृदय से आभारी हैं।

प्रस्तुत प्रकाशन को समय पर उपलब्ध कराने के लिये हमारे आदिनाथ विद्यानिकेतन के मङ्गलार्थी छात्र सुलभ जैन झाँसी, केविन शाह मुम्बई एवं शुद्धात्मप्रकाश जैन, भीलवाड़ा ने अत्यधिक श्रम किया है। हम इनके उज्ज्वल भविष्य की मङ्गल कामना करते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशनकर्ता के रूप में **श्रीमती पूनम जैन धर्मपत्नी मुकेशकुमार जैन, ठेकेदार परिवार, सहारनपुर** के आभारी हैं।

सभी साधर्मीजन इस पुस्तक के माध्यम से वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु की उपासनापूर्वक अपनी परिणति में वीतरागता प्रगट करें - इसी भावना के साथ।

पवन जैन

तीर्थधाम मङ्गलायतन

जिनेन्द्र-पूजन : श्रावक का दैनिक कर्तव्य

श्रावकों को प्रतिदिन करने योग्य कार्य क्या हैं ? वह बताते हुए कहते हैं कि

देवपूजा गुरोऽपास्ति स्वाध्याय संयमस्तपः।
दानंश्चेति गृहस्थाणां षट्कर्माणि दिनेदिने॥

(पद्मनन्दिपञ्चविंशतिका, उपासक संस्कार, गाथा-7)

अर्थात् भगवान जिनेन्द्रदेव की पूजा, निर्ग्रन्थ गुरुओं की उपासना, वीतरागी शास्त्रों का स्वाध्याय, संयम, तप और दान - यह छह कार्य गृहस्थ श्रावक को प्रतिदिन करने योग्य है।

जितनी सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र-सम्यग्दर्शन की उपासना है, उतना धर्म है और उतना ही मोक्षमार्ग है। जिसे ऐसे धर्म की उपासना प्रगट हुई हो अथवा प्रगट करना चाहता हो, उसे उस धर्म के उपदेशक और आराधक - ऐसे देव-शास्त्र-गुरु की उपासना का भाव अवश्य आता है; इसलिए उसे श्रावक का कर्तव्य कहा है।

नियमसार में तो निश्चयरत्नत्रय को ही नियम से कर्तव्य कहकर उसे ही आवश्यक कर्म कहा गया है। वहाँ राग को अथवा व्यवहार को आवश्यक कर्म नहीं कहा है। इसी प्रकार समयसार में भी यह कहा है कि शुद्धात्मा की अनुभूति करना ही आगम का

विधान है, वही भगवान का फरमान है... परन्तु जो ऐसा उत्कृष्ट स्वरूप समझता है, उसे ऐसा उपदेश देनेवाले देव-शास्त्र-गुरु के प्रति परम विनय, बहुमान और भक्तिभाव जागृत हुए बिना नहीं रहता। इसलिए यहाँ सम्यक्श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक के श्रावक के शुभ कर्तव्य को ही आवश्यक कहा गया है।

श्रावक की भूमिका में यह कार्य अवश्य होते हैं, क्योंकि श्रावक की भूमिका में अभी राग तो है; अत: राग का झुकाव किस ओर जाएगा ? वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु की तरफ ही उसका झुकाव जाएगा।

यहाँ यह नहीं समझना कि सम्यग्दर्शन के बाद ही यह कर्तव्य होते हैं और पहले नहीं होते। सम्यग्दर्शन के पूर्व की पात्रता में भी जिज्ञासु जीव को देव पूजा, गुरु सेवा इत्यादि कार्य प्रतिदिन होते हैं। इतनी भी राग की दिशा जिसे न बदले, धर्म के निमित्तों के प्रति इतना भी भक्ति-बहुमान का भाव जिसे न आवे, उसे तो राग की मन्दता भी नहीं है, तब फिर राग के अभावरूप धर्म को तो वह कैसे प्राप्त करेगा, अर्थात् उसमें तो धर्म प्राप्त करने की पात्रता भी नहीं है।

मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव, नियमसार में कहते हैं कि अरे जीव! भव भय के भेदनहारे इन भगवान के प्रति क्या तुझे भक्ति नहीं है ? - तो तू भव समुद्र के मध्य में रहनेवाले मगर के मुख में है। इसका अर्थ ऐसा नहीं है कि राग धर्म है परन्तु जिस प्रकार संसार का प्रेमवाला जीव, स्त्री-पुत्रादिक का मुँह प्रतिदिन रागपूर्वक देखता है; उसी प्रकार धर्म के प्रेमवाला जीव, वीतरागता

को प्राप्त ऐसे देव–गुरु–धर्मात्मा की मुद्रा का दर्शन प्रतिदिन भक्तिपूर्वक करता है। उसमें उसे धर्म का प्रेम और बहुमान का पोषण होता है।

भगवान यह कहते हैं, गुरु भी ऐसा ही उपदेश देते हैं और शास्त्र भी यही कहते हैं कि तू अपने आत्मा की तरफ ढल! हमारे प्रति होनेवाले राग से लाभ मानकर उसके आश्रय में तू अटक मत! इसलिए जो राग से लाभ मानकर रुकता है, उसने देव–शास्त्र–गुरु की वास्तविक उपासना नहीं की है। यहाँ तो ऐसे जीव की बात है कि जिसने सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की आराधना प्रगट की है परन्तु अभी मुनिदशा प्रगट नहीं हुई है; इसलिए गृहस्थपने में रहता है। ऐसे धर्मात्मा को प्रतिदिन भगवान की पूजा, गुरु की उपासना, शास्त्र स्वाध्याय, अपनी शक्ति अनुसार संयम, तप, और दान – यह छह कर्तव्य होते हैं।

धर्मात्मा श्रावक का कर्तव्य है कि प्रतिदिन प्रातःकाल भगवान का दर्शन–पूजन करे। संसार के दूसरे कार्य करने से पहले प्रतिदिन अपने इष्ट ध्येयरूप सर्वज्ञदेव का स्मरण करके, उनकी महिमा का चिन्तवन करे, उनकी प्रतिमा का दर्शन–पूजन करे।

भगवान की वीतराग प्रतिमा को भी भगवान समान ही गिना गया है –

कहत बनारसी अलप भव स्थिति जाकी।
सो ही जिनप्रतिमा प्रमाणै जिनसारखी॥

जिनप्रतिमा, वह जिनभगवान ही है। अहो! उपशान्तरस में झूलती यह जिनमुद्रा निहारते हुए मानो चैतन्यस्वभाव का ही सम्पूर्ण

प्रतिबिम्ब हो! इस प्रकार यथार्थ स्थापना निक्षेप धर्मात्मा को ही होता है और इस प्रकार पहचानपूर्वक जो जीव, जिनप्रतिमा को जिनसमान समझता है, उस जीव की भवस्थिति अल्प ही होती है; वह अल्प काल में मोक्ष प्राप्त करता है।

जिनबिम्ब कैसा होता है ? वीतराग होता है। मौनरूप से मानो वीतरागता का ही बोध देता हो! जैसे, भगवान सर्वज्ञदेव अरहन्त परमात्मा में कोई दूषण नहीं है; उन्हें वस्त्र, शस्त्र, आभूषण, इत्यादि परिग्रह नहीं है; उसी प्रकार उनकी प्रतिमा भी निर्दोष, अर्थात् वस्त्र-शस्त्र और आभूषण से रहित होती है। जो दोषयुक्त हो, वस्त्रादि परिग्रहसहित हो, वह वास्तव में अरिहन्त की प्रतिमा नहीं है। जिस प्रकार सामने जैसा मुख हो, वैसा ही दर्पण में दिखाई दे तो उसे प्रतिबिम्ब कहते हैं परन्तु मुख हो मनुष्य का और दर्पण में दिखाई दे बन्दर का – ऐसा नहीं होता; इसी प्रकार भगवान जिनदेव वीतराग हैं, उनका प्रतिबिम्ब, अर्थात् प्रतिमा, वह भी वीतराग ही होती है; रागवाले प्रतिबिम्ब को वीतराग का प्रतिबिम्ब नहीं कहा जाता है।

देखो! भगवान का दर्शन-पूजन करने के लिए कहा, उसमें इस प्रकार वीतरागस्वरूप से भगवान को पहचान कर दर्शन-पूजन करना चाहिए। उनके स्वरूप की पहचान किये बिना सच्चा लाभ नहीं होता है। श्रावक-संस्कार कैसा होता है, उसकी यह बात है। जैनधर्म के उपासक श्रावक के हृदय में भगवान जिनदेव विराजमान होते हैं, वह स्वप्न में भी अन्य को नहीं मानता है। जो जीव कुदेवादि को मानता हो, उसे तो वास्तव में श्रावक के संस्कार ही

नहीं हैं। जिनदेव का उपासक किसी भी सरागी देव को नहीं मानता है।

जीव का इष्ट-ध्येय क्या है? यही कि सर्वज्ञता और पूर्ण आनन्दरूप परमात्मदशा प्रगट करना; तो अब तक ऐसी परमात्मादशा जिन्होंने प्रगट की है, वे परमात्मा कैसे होते हैं? – उसकी पहचान करना चाहिए। जिसे परमात्मदशा का प्रेम जागृत हुआ हो, उसे ऐसे परमात्मा के अथवा उनकी प्रतिमा के दर्शन और पूजन-भक्ति की उमङ्ग आये बिना रहता ही नहीं। जिसे ऐसा भाव नहीं आता और इसका निषेध करता है तो समझना कि उसे परमात्मपद प्रिय लगा ही नहीं है।

यहाँ देव-पूजा की बात की है, उसमें भगवान का जिनमन्दिर बनवाना, उसकी शोभा बढ़ाना, उसके विशाल महोत्सव करना – यह सब भी साथ ही समाहित हो जाता है। जिस प्रकार अपने रहने के लिए मकान बनाने का और उसकी शोभा बढ़ाने का भाव, पापभाव होने पर भी, गृहस्थ को आता है; उसी प्रकार धर्मीजीव को राग की दिशा बदलकर जिनमन्दिर बनाने का और प्रतिष्ठा महोत्सव इत्यादि कराने का भाव आता है। अहो! तीन लोक के नाथ का जो घर, तीन लोक के नाथ अरिहन्त परमात्मा जिसमें विराजेंगे – ऐसा जिनमन्दिर; उसकी उत्कृष्ट शोभा कैसे बढ़े, उसके लिए मैं अपने तन-मन-धन से क्या-क्या सेवा करूँ? – ऐसा भाव धर्मी को तथा धर्म के जिज्ञासु श्रावक को आये बिना नहीं रहता।

पूर्ण ध्येयरूप जो सर्वज्ञपद, परमात्मपद, उसकी अचिन्त्य महिमा की क्या बात! ऐसे पूर्ण ध्येयरूप सर्वज्ञ परमात्मा को सबसे

पहले हमेशा स्मरण करके, श्रावक उनके दर्शन-पूजन करता है। उस दर्शन-पूजन करने से अपने परम वीतराग चैतन्यबिम्ब स्वभाव का स्मरण और भावना जागृत होती है। भगवान कुन्दकुन्दस्वामी प्रवचनसार में कहते हैं कि –

जो जानता अरहन्त को द्रव्य-गुण-पर्याय से।
वह जीव जाने आत्म को उस मोहक्षय पावे अरे॥

प्रवचनसार, गाथा-80

भगवान अरिहन्तदेव जैसा ही अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, ऐसा पहचान कर जहाँ अन्तरोन्मुख हुआ, वहाँ मोह का क्षय होकर सम्यग्दर्शन होता है। जो जीव ऐसे अरिहन्तभगवान के दर्शन -पूजन का भी निषेध करता है, वह तो तीव्र मोह में डूबा हुआ है। श्रावक के प्रतिदिन करने योग्य कर्तव्यों में पहला ही कर्तव्य भगवान जिनेन्द्रदेव के दर्शन-पूजन करना कहा है।

(विदेश से आये हुए एक भाई ने पूछा) जिस देश में जिनमन्दिर इत्यादि न हो, वहाँ क्या करना चाहिए?

(उत्तर देते हुए गुरुदेव ने कहा) जिस देश में धर्म की और सम्यग्दर्शन की हानि होने का प्रसङ्ग हो, वह देश छोड़ देना चाहिए। जहाँ देव-शास्त्र-गुरु का योग न हो, जहाँ भगवान के दर्शन प्राप्त न हों, जहाँ धर्मात्मा का सङ्ग न मिले, जहाँ सच्चे शास्त्र की स्वाध्याय न मिले – ऐसे क्षेत्र को मुमुक्षु जीव को छोड़ देना चाहिए। ऐसे क्षेत्र में कदाचित् लाखों-करोड़ों रुपयों की आमदनी होती हो, तो भी उसका लोभ मुमुक्षु को नहीं करना चाहिए क्योंकि धन के ढेर के लिए कहीं धर्म को नहीं बेचा जा सकता है। इस (उपासक

संस्कार) अधिकार की ही छब्बीसवीं गाथा में शास्त्रकार कहेंगे कि सम्यग्दृष्टि श्रावक ऐसे देश का, ऐसे पुरुष का, ऐसे धर्म का और ऐसी क्रिया का कदापि आश्रय नहीं करते कि जहाँ उनका सम्यग्दर्शन मलिन होने की और व्रतों का नाश होने की सम्भावना हो।

देखो, यह धर्म का प्रेम है! धर्म का प्रेमी जीव ऐसे द्रव्य-क्षेत्र -काल-भाव का सेवन करता है, जहाँ अपने धर्म को पोषण प्राप्त होता है। आराधना को पुष्टि दे - ऐसे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप सामग्री का सेवन का उपदेश शास्त्र में है। मुनिराजों को भी सम्बोधित करते हुए प्रवचनसार में कहते हैं कि - हे मुनियों! तुम्हारे गुण की रक्षा के लिए तथा उनकी वृद्धि के लिए हमेशा गुणीजनों के सत्सङ्ग में रहना... असत्सङ्ग मत करना।

मुमुक्षु जीव ऐसे मनुष्यों का सङ्ग छोड़ दे कि जो सदा विपरीतता का पोषण करते हों, जो धर्मात्मा की और धर्म की निन्दा करते हों उनका सङ्ग मुमुक्षु जीव छोड़ देता है। जिस सङ्ग में अथवा जहाँ धर्माचरण में विघ्न आता हो - ऐसे कुदेश में धर्मात्मा को नहीं रहना चाहिए तथा जिसके उपार्जन में तीव्र अन्याय, तीव्र हिंसा इत्यादि तीव्र पाप होता हो - ऐसी लक्ष्मी को भी धर्मी जीव छोड़ देता है। जिज्ञासु जीव भी उसे छोड़ देता है, इतनी पात्रता तो धर्म प्राप्त करने के लिए होनी ही चाहिए।

धर्म के जिज्ञासु को पाप का कितना भय होता है! पाप का भय छोड़ कर कैसे भी हिंसादिक पाप कार्यों में वर्ते - ऐसा भाव, पात्र जीव को नहीं होता। तीव्र पाप का त्याग तो सामान्य लौकिक